

सद्गुरवे नमः

महाभारत मीमांसा

तेरहवां : अनुशासन पर्व

. हमारे सुख-दुख के कारण हमारे कर्म हैं

युधिष्ठिर ने कहा-पितामह! आपने शांति के विषय में अनेक युक्तियों से अनेक कथाओं के माध्यम से बहुत कुछ समझाया, परंतु मेरे मन में शांति नहीं आ रही है। मैंने अपराध किया है। आपके शरीर में बाणों से हुए गहरे घावों तथा रक्त से लथपथ शरीर को याद कर मेरा मन अपराध-बोध से व्यथित हो जाता है। मेरे कारण बहुत-सी सेना एवं राजपुरुष मारे गये हैं। हम पांडव और धृतराष्ट्र के सभी पुत्र क्रोध के वशीभूत हो जो निंदित हिंसाकर्म किये हैं, उसके फल में हम सबकी कौन-सी दुर्गति होगी, इसका पता नहीं है। मैं तो राजा दुर्योधन की मृत्यु अच्छी मानता हूँ। उन्हें यह संताप नहीं देखना पड़ रहा है। यदि मैं भाइयों सहित पहले ही मार दिया गया होता, तो आज मैं यह अपनी दुर्गति न देखता। निश्चय ही विधाता ने मुझे पापी ही रचा है। आप ऐसा उपदेश दें कि मुझे आज शांति मिले तथा मरने के बाद दुर्गति न हो।

भीष्म ने कहा-गौतमी ब्राह्मणी, व्याध, सर्प, मृत्यु और काल का संवाद सुनो। यह पुराना इतिहास है। गौतमी नाम की ब्राह्मणी थी। वह बूढ़ी और शांतिपरायणा थी। एक दिन उसके एकलौते पुत्र को सर्प ने डस लिया जिससे वह मर गया। एक अर्जुनक नामक व्याध था, उसने सर्प को तांत के फंदे में फंसाकर बांध लिया और गौतमी के पास ले आया और कहा-गौतमी! तुम्हारे पुत्र को इस दुष्ट ने काट खाया है। मैं इसको मार डालना चाहता हूँ। बताओ, इसे टुकड़े-टुकड़े काट डालूं या आग में झोंक दूं।

गौतमी ने कहा-अर्जुनक! इस सर्प को छोड़ दो। यह नादान है। इसको मार देने से मेरा पुत्र जी नहीं सकता, फिर यह पाप का बोझा सिर पर क्यों लादा जाय! जो पाप से अपने को बचाते हैं, वे संसार-सागर से पार हो जाते हैं, और

जो उत्तेजना में पड़कर पाप करते हैं, वे भव-सागर में डूब जाते हैं। मेरे पुत्र की आयु समाप्त थी, तभी यह मरा है। मैं सर्प को मारने की अनुमति नहीं दे सकती।

अर्जुनक व्याध ने कहा-यह सर्प दुष्ट है। यह जीवित रहेगा तो अनेकों को डसेगा, अतएव इसे मैं मारना चाहता हूँ। गौतमी! आपके अहिंसाव्रत की राय स्वस्थ मनुष्य स्वीकार सकता है। मैं अस्वस्थ एवं क्रोधी मनुष्य हूँ, अतएव इस दुष्ट सर्प को मार देना चाहता हूँ।

सर्प ने कहा-अर्जुनक! तुम मुझे दोष न दो। मैं तो मृत्यु से प्रेरित था। अतएव मैंने केवल मृत्यु की आज्ञा बजायी है। मुझे दोष क्यों देते हो?

मृत्यु ने जब सर्प द्वारा अपनी निंदा सुनी, तो वह सामने प्रकट होकर कहने लगी-सर्प! तू मुझे क्यों बदनाम कर रहा है? मैं तो काल से प्रेरित थी। काल ने मुझे प्रेरित किया, तब मैंने तुम्हें प्रेरणा दी।

काल ने जब देखा कि मैं बदनाम हो रहा हूँ, तो वह सामने प्रकट हो गया। उसने कहा-इस मनुष्य की मृत्यु में न मैं अपराधी हूँ, न मृत्यु अपराधी है और न सर्प अपराधी है। इस मनुष्य के कर्म ही ऐसे थे। कर्म ही जीव के सुख-दुख के संबंध का सूचक है।

भीष्म ने कहा-युधिष्ठिर! तुम मन में संताप न करो। सब जीव अपने कर्म से ही सुख-दुख पाते हैं (अध्याय)।

मीमांसा

पाठक समझ सकते हैं कि सर्प मानवी भाषा नहीं बोल सकता। मृत्यु तथा काल कोई व्यक्ति नहीं हैं कि वे मनुष्य से बात कर सकें। युधिष्ठिर का मनस्ताप स्वाभाविक है। बातों को समझाने के लिए कहानी का रूपक है।

. अतिथि-सत्कार का अतिरेक

युधिष्ठिर ने कहा-दादा! कोई ऐसा गृहस्थ हुआ है जिसने मृत्यु को जीत लिया हो? भीष्म ने कहा-सुदर्शन नाम का एक गृहस्थ था, वह अतिथि-सत्कार द्वारा मृत्यु को जीत लेने की प्रतिज्ञा कर इस साधना में दृढ़ हो गया। कुछ दिनों में उसका विवाह हुआ। पत्नी आयी। उसने पत्नी से कहा-ओघवती! कोई अतिथि आवे तो उसके प्रतिकूल कोई काम नहीं करना चाहिए। अतिथि जिन वस्तुओं से संतुष्ट हो, उसे समर्पित करना चाहिए। यदि अतिथि के संतोष के लिए तुम्हें अपना शरीर भी देना पड़े तो तुम्हें अन्यथा विचार न कर उसे अपना

. अतिथि-सत्कार का अतिरेक

शरीर समर्पित कर देना चाहिए। यदि तुम मुझे आदर्श मानती हो तो मैं चाहे घर में रहूँ या बाहर, यह व्रत तुम्हें पालन करना चाहिए।

उसकी पत्नी ओघवती ने कहा—कोई कारण नहीं है कि मैं आपकी आज्ञा का उल्लंघन करूँ। मृत्यु सुदर्शन के पीछे लगी रहती थी कि यह कुछ प्रतिज्ञा के विरुद्ध करे, तो मैं इसे अपने वश में कर लूँ।

सुदर्शन समिधा (लकड़ी) लेने के लिए वन में गये थे। उनके घर पर ब्राह्मण आ गया। उसने कहा—मैं तुमसे आज अतिथि-सत्कार चाहता हूँ और उसके लिए तुम आज मुझे अपना शरीर समर्पित कर दो। ओघवती को अपने पति की आज्ञा की याद आयी और उसने लजाते-लजाते अतिथि को अपना शरीर समर्पित कर दिया। अतिथि और ओघवती दोनों कमरे के भीतर थे। इतने में सुदर्शन आ गये। उसने पुकारा—देवि! तू कहां है? सुदर्शन को कोई उत्तर नहीं मिला, क्योंकि वह अतिथि-सत्कार में लगी थी।

सुदर्शन को उत्तर अतिथि ब्राह्मण ने दिया—मैं अतिथि हूँ। तुम्हारी पत्नी ओघवती मेरी सेवा में है। सुदर्शन ने मन, वाणी, नेत्र और क्रिया से ईर्ष्या तथा क्रोध का त्याग कर दिया था; अतएव वे हंसते हुए बोले—आपकी 'सुरतकामना' पूर्ण हो। इसके लिए मुझे प्रसन्नता है। घर पर आये हुए अतिथि का हर प्रकार से सत्कार करना चाहिए। मेरे प्राण, मेरी पत्नी और मेरा सब कुछ अतिथि को समर्पित है। मैं अपनी प्रतिज्ञा सिद्ध करने के लिए अपना ही शरीर समर्पित करने के लिए तैयार हूँ। पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, नेत्र, बुद्धि, आत्मा, मन, काल और दिशाएं, ये सदैव प्राणियों के शरीर में निवास करते हैं और उनके पाप-पुण्य को देखते रहते हैं। यह मेरी बात यदि सत्य है, तो देवता मेरी रक्षा करें, अन्यथा मुझे जलाकर भस्म कर दें।

सुदर्शन के उक्त बात कहते ही सारी दिशाओं से आवाज आने लगी—'तुम्हारा कहना सत्य है। इसमें लेशमात्र झूठ नहीं है।'

इतने में वह अतिथि ब्राह्मण घर में से निकलकर आकाश में खड़ा हो गया, वह धर्म था। उसने कहा—मैं तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए तुम्हारे घर में आया था कि तुम अपने सत्य एवं प्रतिज्ञा में दृढ़ हो कि नहीं। मैंने जान लिया कि तुम सत्यप्रतिज्ञ हो। तुम्हारी पत्नी ने भी तुम्हारी सेवा के बल से आसक्ति, राग, आलस्य, मोह और द्रोह को जीत लिया है। इतने में हजार घोड़ों से जुते हुए रथ पर चढ़कर इंद्र भी सुदर्शन से मिलने आये। सुदर्शन ने अतिथि-सत्कार के बल पर मृत्यु, आत्मा, लोक, पंचभूत, बुद्धि, काल, मन, आकाश, काम और क्रोध को जीत लिया था।

भीष्म ने कहा-युधिष्ठिर! तुम यह मन में पक्का निश्चय कर लो कि गृहस्थ के लिए अतिथि-सत्कार से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। सौ यज्ञों से भी बढ़कर अतिथि-सत्कार का पुण्य है। जो मनुष्य इस सुदर्शन के चरित्र का रोज-रोज पाठ करता है, वह पुण्य लोक को प्राप्त होता है (अध्याय)।

मीमांसा

अतिथि को मीठा वचन, आदर, आसन, जल, भोजन आदि देना ठीक है, पत्नी नहीं। पुरुष अपनी पत्नी को संपत्ति न समझे, अपितु स्वतंत्र प्राणी समझे। पति का कोई अधिकार नहीं है कि वह अपनी पत्नी को किसी अतिथि की काम-लिप्सा पूर्ण करने के लिए देह समर्पित करने की आज्ञा दे। यह कल्पित कहानी अत्यंत भावुकतापूर्ण और 'पत्नी-समर्पण' अत्यंत घृणित है। इसमें धर्म नहीं, अधर्म है। हजार घोड़ों के रथ पर इंद्र भी सुदर्शन के दर्शन के लिए आ गये जो केवल कल्पना है। सूर्य इंद्र है और उसकी हजारों रश्मियां उसके अश्व हैं। ऐसी बातें वेदों में हैं। धर्म का ही अतिथि बनकर परीक्षा करने के लिए आना भी कपोल-कल्पित है। 'धर्म' मन की पवित्र अवस्था है, कोई देवता, दानव तथा मनुष्य नहीं। अतिथि-सत्कार की महत्ता बताने के लिए ऐसी भावुकतापूर्ण तथा भद्दी कहानी गढ़ने की आवश्यकता न थी।

. विश्वामित्र का महत्त्व

युधिष्ठिर ने पूछा-दादा! विश्वामित्र क्षत्रिय होकर ब्राह्मण कैसे हो गये? विश्वामित्र ने अपनी तपस्या के प्रभाव से वसिष्ठ के सौ पुत्रों को कैसे नष्ट कर दिया था? विश्वामित्र अपने क्रोध के आवेश में बहुसंख्यक तेजस्वी राक्षस रच डाले। उन्होंने कुशिक वंश की स्थापना की, जिसमें सैकड़ों ब्रह्म ऋषि हुए। अजीगर्त के पुत्र शुनःशेष राजा हरिश्चंद्र के यज्ञ में बलिपशु थे; परंतु विश्वामित्र ने उसे हत्या से छुड़ाकर अपने पुत्र रूप में स्वीकारा और अपने द्वारा पैदा किये हुए पुत्रों को इसलिए त्याग दिया कि उन्होंने शुनःशेष की वरीयता नहीं स्वीकारी थी। शुनःशेष आगे देवरात नाम से विख्यात हुए। इक्ष्वाकुवंशी त्रिशंकु को उनके भाई-बंधुओं ने त्याग दिया था और वे स्वर्ग से भ्रष्ट हो गये थे, परंतु विश्वामित्र ने त्रिशंकु को पुनः स्वर्ग में प्रतिष्ठित किया। विश्वामित्र के ही प्रभाव से पवित्र कौशिकी नदी प्रकट हुई। रंभा अप्सरा विश्वामित्र की तपस्या भंग करना चाही, तो विश्वामित्र ने उसे शाप देकर पत्थर बना दिया। विश्वामित्र के भय से एक बार वसिष्ठ ने अपने को रस्सी से बांधकर विपाशा नदी में गिरा दिया था, विपाशा ने उन्हें नहीं डुबाया, अपितु उनके बंधनों को खोल दिया। इसलिए उस नदी का

. विश्वामित्र का महत्त्व

नाम तभी से विपाशा हुआ, क्योंकि उसने वशिष्ठ के पाश खोल दिये थे। विश्वामित्र से इंद्र भी प्रसन्न हुए थे। विश्वामित्र ध्रुव और सप्त ऋषियों के बीच में उत्तर दिशा के आकाश में तारा रूप में स्थित हैं। विश्वामित्र के अन्य भी अद्भुत कार्य हैं। मेरे मन में कुतूहल है कि वे क्षत्रिय से ब्राह्मण कैसे हुए?

भीष्म ने कहा—भरत वंश में राजा अजमीढ हुए! फिर क्रमशः जहु-सिंधु द्वीप-बलाकाश्व-बल्लभ-कुशिक-गाधि हुए। गाधि के सत्यवती नाम की कन्या हुई। कन्या युवती हुई। ऋचीक नाम के ऋषि ने गाधि से उनकी कन्या सत्यवती को मांगा। गाधि ने ऋचीक को दरिद्र समझकर अपनी कन्या उन्हें नहीं दी। जब ऋचीक लौटने लगे, तब गाधि ने कहा—महर्षे! यदि आप शुल्क दें तो मैं आपको अपनी कन्या दे सकता हूँ। ऋचीक ने कहा—वह शुल्क क्या होगा? गाधि ने कहा—एक हजार घोड़े, जो चंद्रमा के समान चमकीले हों, वायु के समान वेगवान हों और जिनका एक-एक कान श्याम रंग का हो।

भृगुवंशी च्यवन ऋषि के पुत्र ऋचीक ने वरुण देव से कहा कि आप मुझे इन लक्षणों वाले एक हजार घोड़े दीजिए। वरुण देव जल के देवता हैं ही। उन्होंने एवमस्तु कहा। तुरंत ऋचीक ने घोड़ों का स्मरण किया, तो गंगा नदी से एक हजार घोड़े उपर्युक्त लक्षणों के प्रकट हो गये। यह घटना कान्यकुब्ज (कन्नौज) के पास घटी, इसलिए आज भी वहां गंगा के पास अश्वतीर्थ है। ऋचीक ने राजा गाधि को उनके मनचाहे घोड़े दे दिये और गाधि ने अपनी कन्या सत्यवती ऋचीक को दे दी।

ऋचीक अपनी पत्नी से प्रसन्न थे। उन्होंने उससे कहा—तुम क्या चाहती हो? सत्यवती ने अपनी माता से यह बात कही। माता ने संकोचपूर्वक सिर नीचे करके कहा—बेटी! तुम्हारा पति मुझे भी पुत्र प्रदान करने की कृपा करे। सत्यवती ने अपनी माता की बात ऋचीक से कही। ऋचीक ने प्रसन्न होकर सत्यवती और उसकी माता को पुत्र होने का वर दिया, और कहा कि तुम्हारी माता ऋतुस्नान के बाद पीपल पेड़ का आलिंगन करे और तुम गूलर पेड़ का आलिंगन करो, फिर दोनों को अभीष्ट पुत्र प्राप्त होगा। ऋचीक ने मंत्र से अभिषिक्त करके 'चरु' तैयार किया। यह उबला अन्न होता है। उसे दो पात्रों में रखकर एक उसको खाने को कहा और दूसरा उसकी माता को।

माता ने कहा—बेटी! मैं तुम्हारी माता होने से तुम पर अधिकार रखती हूँ। अतएव तुम अपना चरु मुझे दे दो और मेरा चरु तुम खा लो। इसी प्रकार माता ने पेड़ों के आलिंगन को बदल लिया। सत्यवती ने माता की बात मान ली और दोनों ने वृक्ष का आलिंगन तथा चरु-ग्रहण की अदला-बदली कर ली। सत्यवती के गर्भ के लक्षण को देखकर ऋचीक खिन्न हुए और उन्होंने उससे

कहा कि तुमने चरु को बदलकर उपयोग किया है और वृक्ष का आलिंगन भी बदल लिया है। मैंने तुम्हारे चरु में ब्रह्मतेज की स्थापना की थी और तुम्हारी माता के चरु में क्षत्रियतेज की। मैंने सोचा था कि तुम तीनों लोकों में विख्यात ब्राह्मण को जन्म दोगी और तुम्हारी माता सर्वश्रेष्ठ क्षत्रिय को जन्म देगी। माता के स्नेह में पड़कर तुमने अच्छा काम नहीं किया। अब तुम्हारी माता उत्तम ब्राह्मण को जन्म देगी और तुम भयंकर कर्म करने वाले क्षत्रिय की जननी होओगी।

सत्यवती घबरा गयी और उसने ऋचीक से कहा-आप कृपा करें कि मेरे गर्भ से क्षत्रिय-पुत्र न उत्पन्न हो। भले मेरे पुत्र का पुत्र क्षत्रिय हो जाय। ऋचीक ने कहा-ऐसा ही हो। इसके बाद सत्यवती से पुत्र हुआ उसका नाम जमदग्नि हुआ। उधर गाधि की पत्नी से विश्वामित्र नाम का पुत्र पैदा हुआ। इसीलिए विश्वामित्र क्षत्रिय होकर भी ब्राह्मणत्व को प्राप्त ब्राह्मण-वंश के प्रवर्तक हुए जिनके पुत्र-पौत्रों में बड़े-बड़े तेजवान ब्राह्मण और ऋषि हुए। विश्वामित्र यद्यपि क्षत्रिय थे, तथापि ऋचीक मुनि ने उनमें ब्रह्मतेज का आधान किया था। उधर सत्यवती से जमदग्नि नाम का ब्राह्मण हुआ, परंतु उसके पुत्र परशुराम हुए जो ब्राह्मण-वंश में पैदा होकर भी भयंकर हिंसाकर्म करने वाले क्षत्रिय हुए (अध्याय -)।

मीमांसा

वेदों के अनुसार विश्वामित्र ब्राह्मण ही हैं, क्षत्रिय नहीं। यह तो पौराणिक गाथाओं में उनको क्षत्रिय बनाकर फिर उनके तप से उन्हें ब्राह्मण बनाया गया है। ऊपर कथा में वर्णन कितना भावुकतापूर्ण तथा काल्पनिक है, यह विवेकी समझ सकते हैं। “विश्वामित्र ने त्रिशंकु को स्वर्ग भेज दिया, कौशिकी नदी पैदा कर दी, रंभा अप्सरा को शाप से पत्थर बना दिया, विश्वामित्र ध्रुव तारा के साथ आकाश में तारा बनकर खड़े हैं। वरुण की कृपा तथा ऋचीक की कामना से गंगा नदी में से एक हजार घोड़े निकल आये। ऋचीक के आशीर्वाद से सत्यवती के साथ गाधि की पत्नी भी गर्भवती हो गयी। विश्वामित्र, जमदग्नि तथा परशुराम ऋचीक के कृपाफल हैं। बरगद तथा पीपल के आलिंगन तथा चरु खाने से तेजवान पुत्र की प्राप्ति।” यह सब अजीबोगरीब बातें कारण-कार्य व्यवस्था के विरुद्ध तथा घोर काल्पनिक हैं। गाथाओं में सर्वत्र अंधविश्वास की बातें भरी हैं। पाठक विवेक का आधार रखकर उनमें से सार लें।

विश्वामित्र ऋग्वेद के अनुसार ब्राह्मण हैं और उनकी तथा उनके अनुगामियों की रचना ऋग्वेद का तीसरा मंडल है। सातवां मंडल वसिष्ठ तथा उनके अनुगामियों की रचना है।

. स्वामिभक्ति और पुरुषार्थ पर बल

. स्वामिभक्ति और पुरुषार्थ पर बल

काशी के आस-पास कहीं एक व्याध के जहरीले बाण से मृगा न विंधकर एक वृक्ष विंध गया, इसलिए वह सूख गया। उस वृक्ष के खोखले में एक तोता रहता था। उसे उस वृक्ष से बड़ा प्रेम था, इसलिए वृक्ष के सूख जाने पर भी वह अपना निवास छोड़कर कहीं अलग नहीं गया। वह कहीं नहीं जाता था। उसने चारा चुगना भी छोड़ दिया था। वह इतना शिथिल हो गया था कि चल-फिर नहीं पाता था।

तोते से प्रभावित होकर इंद्र ब्राह्मण के वेष में उसके पास गये और उन्होंने तोते से कहा-पक्षी! तुम इस सूखे पेड़ को क्यों नहीं छोड़ देते हो? तोते ने कहा-मैंने इस वृक्ष पर जन्म लिया, इससे आहार लिया और पला। यह वृक्ष मेरा महान आश्रय बना, इसलिए इसके प्रति मेरी भक्ति है, अतएव इसे छोड़कर मैं अन्यत्र नहीं जाना चाहता। जब यह वृक्ष हराभरा फल-फूल वाला था, समर्थ था, तब इससे मेरी रक्षा हुई। आज सूखकर असमर्थ हो गया, तो मैं इसका तिरस्कार कर अलग चला जाऊँ, यह अच्छी बात नहीं है।

तोते की वृक्ष के प्रति ऐसी भक्ति जानकर इंद्र ने वृक्ष को हराभरा तथा फूल-फल वाला कर दिया। (अध्याय)

युधिष्ठिर ने पूछा-पितामह! दैव (प्रारब्ध) और पुरुषार्थ (प्रयत्न), इन दोनों में कौन श्रेष्ठ है? भीष्म ने कहा-वसिष्ठ और ब्रह्मा के संवाद में पुराना इतिहास है, उसे मैं यहां दोहराता हूँ। तुम उसे सुनो। पुराकाल में एक बार वसिष्ठ ने ब्रह्मा से पूछा-दैव बड़ा है कि पुरुषार्थ? ब्रह्मा जी ने कहा-बीज से अंकुर, अंकुर से पत्ते, पत्तों से नाल, नाल से तने और शाखाएं होती हैं। शाखाओं से फूल, फल तथा बीज क्रमशः होते हैं; और बीज कभी निष्फल नहीं होता है। किसान जैसा बीज बोता है, वैसा फल पाता है। इसी प्रकार जीव जैसा कर्म करता है, वैसा फल पाता है। जैसे बिना बीज बोये तथा खेत की सेवा किये फल नहीं होता, वैसे बिना पुरुषार्थ के दैव अर्थात् प्रारब्ध नहीं बनता। पुरुषार्थ ही से प्रारब्ध बनता है। अतएव अपना किया हुआ कर्म ही फल देता है। पुण्य कर्म का फल सुख तथा पाप कर्म का फल दुख मिलता है। परिश्रमी व्यक्ति ही उत्तम फल पाता है। अकर्मण्य मनुष्य उसी प्रकार दुखी होता है जिस प्रकार घाव पर नमक छिड़कने पर उस मनुष्य को दुख होता है। जो मनुष्य प्रयत्न छोड़कर दैव के भरोसे रहता है वह सब प्रकार से भ्रष्ट हो जाता है। मेहनत न करने से दैव किसी को कुछ नहीं दे सकता। हमारा पुरुषार्थ ही दैव का निर्माण करता है।

महाभारत मीमांसा : तेरहवां-अनुशासन पर्व

“आत्म ही आत्मा का बंधु है और आत्मा ही आत्मा का शत्रु है। आत्मा ही अपने कर्म तथा अकर्म का साक्षी है।”

“कोई मनुष्य परिश्रम के बिना फूलता-फलता हुआ नहीं दिखता है। दैव में इतना बल नहीं है कि वह किसी को कुमार्ग से हटाकर सुमार्ग में लगा दे। जैसे शिष्य गुरु को आगे करके चलता है, वैसे ही दैव पुरुषार्थ को आगे करके पीछे-पीछे चलता है। मनुष्य का संचित संस्कार ही दैव को घुमाता है।” यथा-

न च फलति विकर्मा जीवलोके न दैवं
व्यपनयति विमार्गं नास्ति दैवे प्रभुत्वम्।
गुरुमिव कृतमग्र्यं कर्म संयाति दैवं
नयति पुरुषकारः संचितस्तत्र तत्र

(अध्याय , श्लोक)

मीमांसा

तोता और इंद्र तो रूपक मात्र हैं। न तोता मानुषी भाषा बोल सकता है और न इंद्र कोई व्यक्ति है। वस्तुतः इस कहानी के माध्यम से स्वामिभक्ति को उजागर किया गया है। स्वामी की असमर्थता देखकर उसे न छोड़ना, अपितु उसका साथ निभाना स्वामिभक्ति है और मानवता की पहचान है। सूखे वृक्ष को कोई हरा नहीं कर सकता। वस्तुतः स्वामिभक्ति से बिगड़ा दिन बन जाता है।

दैव और पुरुषार्थ में पुरुषार्थ ही श्रेष्ठ है। पुरुषार्थ से ही दैव (प्रारब्ध) का निर्माण होता है।

. कर्म-फल और सदाचार का वर्णन तथा शिव-सहस्रनाम

सातवें अध्याय में कर्मों के फल का वर्णन है। बताया गया कि जीव जैसे अच्छे-बुरे कर्म करता है, वैसे फल पाता है। आंख, नाक, कान, जीभ, चाम और मन इन छह इंद्रियों से किये गये कर्म जीव के साथ चलते हैं। द्वार पर कोई अतिथि आवे तो उसे प्रसन्न मन से देखे, उसकी सेवा में मन लगावे, उससे मीठी

. आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।

आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी कृतस्याप्यकृतस्य च

(अनुशासन पर्व, अध्याय , श्लोक)

. कर्म-फल और सदाचार का वर्णन तथा शिवसहस्रनाम

वाणी बोले, जब तक वह रहे, उसके स्वागत-सत्कार में लगा रहे और जब वह जाने लगे तब उसके पीछे-पीछे कुछ दूर चलकर उसे विदा करे। यह गृहस्थ का कर्तव्य है। तृष्णा का त्याग ही महा सुख है। शरीर जीर्ण हो जाता है, परंतु तृष्णा जीर्ण नहीं होती। तृष्णा त्यागने से ही वह मिटती है। माता, पिता और गुरु की सेवा करके उन्हें संतुष्ट करना चाहिए।

आठवें तथा नवें अध्याय में ब्राह्मणों की महिमा बतायी गयी है। दसवें अध्याय में अनधिकारियों को उपदेश न देने की बात बतायी गयी है। अनधिकारी का अर्थ अमुक वर्ण या वर्ग भी मान लिया गया है जो केवल अज्ञान तथा अहंकार है। ग्यारहवें अध्याय में यह बताया गया है कि लक्ष्मी कहां निवास करती है। सदाचार, शिष्टता, विनम्रता, सुव्यवस्था, मीठे वचन, स्वच्छता, उदारता आदि सद्गुण जहां होते हैं, वहीं लक्ष्मी निवास करती है।

बारहवें अध्याय में कृतघ्न की दुर्गति बतायी गयी है। उपकार करने वाले के प्रति अपकार करना महा पाप है और उसका फल दुख है।

तेरहवें अध्याय में बताया गया है कि मन, वाणी और शरीर से जो कर्म होते हैं, उनके फल जीव पर आते हैं। इसलिए इन तीनों को शुद्ध रखना चाहिए। शरीर के तीन पाप हैं-चोरी, हत्या और व्यभिचार। वाणी के चार पाप हैं-बकवास, कटुवचन, चुगुली तथा असत्य। मन के तीन पाप हैं- लोभ, वैर और कर्म-फल पर अविश्वास। इस अध्याय के अंत भाग में लंबा प्रक्षेप का अंश है जिसके श्लोकों के नंबर नहीं हैं। इसमें नारायण की भावुकतापूर्वक महिमा गायी गयी है।

चौदहवें लंबे अध्याय में जिसमें चार सौ उन्तीस () श्लोक हैं, शंकर जी की भावुकतापूर्ण महिमा गायी गयी है। पंद्रहवें अध्याय में श्रीकृष्ण शिव जी से आठ वर मांगते हैं-दृढ़ धैर्य, युद्ध बल, श्रेष्ठ यश, उत्तम बल, योग बल, सबका प्यारा होना, आपका सान्निध्य तथा दस हजार पुत्र। श्रीकृष्ण पार्वती से भी आठ वर मांगते हैं-ब्राह्मणों से मैत्री, मेरे पिता मुझ पर प्रसन्न रहें, मुझे सैकड़ों पुत्र प्राप्त हों, मुझे उत्तम भोग सदैव मिलते रहें, कुल में प्रसन्नता बनी रहे, मेरी माता प्रसन्न रहे, मैं हर कार्य में सफल रहूं और मुझे शांति मिले।

शंकर और उमा ने श्रीकृष्ण को मुंहमांगा वर दे दिया। सोलहवें अध्याय में महादेव जी की स्तुति-प्रार्थना है और सतरहवें अध्याय में शिवसहस्रनामस्तोत्र है जिसमें शिव जी के एक हजार आठ नाम गिनाये गये हैं और उसका पाठफल बताया गया है। अठारहवें अध्याय में अनेक लोगों द्वारा शिव जी से मिले हुए

लाभों का वर्णन किया गया है। कुल मिलाकर भावुकता का कथन है (अध्याय -)।

मीमांसा

लेखक जब जिसको गिराना या उठाना चाहता है तब उसको गिराता या उठाता है। यहां श्रीकृष्ण को नीचे करके शिव को उठाया गया है। वर भी शिव से दस हजार पुत्र, तब पार्वती से सैकड़ों पुत्र मांगा जाता है। सारी महिमा मनुष्य की है। वही देवता, ईश्वर तथा भगवान बनाता है और उन्हें उठाता-गिराता है; अतएव ज्ञान क्षेत्र में मनुष्य सर्वोच्च है।

. पति-पत्नी का सहधर्म कैसे?

युधिष्ठिर ने पूछा-पितामह! स्त्री-पुरुष का विवाह तथा एक साथ रहना सहधर्म कहा गया है। परंतु एक के मर जाने पर सहधर्म कहां रहता है? पति एवं पत्नी दोनों में से एक की पहले मृत्यु होती है, तब बचे हुए एक व्यक्ति को सहधर्म कहां रहता है? धर्मसूत्र तथा वेदों में भी यह बात पढ़ी जाती है कि स्त्रियां असत्य बोलती हैं, तो उनका असत्य भाषण भी सहधर्म में आ जाता है; परंतु असत्य धर्म नहीं हो सकता। पति-पत्नी साथ रहकर जो कार्य करते हैं, उसे औपचारिक रूप में धर्म नाम दे दिया गया है।

भीष्म ने कहा-इसके विषय में पुराना इतिहास है। अष्टावक्र ने वदान्य ऋषि से उनकी कन्या मांगी जिसका नाम सुप्रभा था। वदान्य ने कहा कि मैं तुम्हें अपनी कन्या अवश्य दूंगा, परंतु पहले तुम उत्तर दिशा में जाओ, वहां तुम्हें उसका दर्शन होगा।

अष्टावक्र ने कहा-उत्तर दिशा में जाकर मुझे किसका दर्शन करना होगा और वहां मुझे क्या करना चाहिए? वदान्य ने कहा-तुम कुबेर की अलकापुरी तथा हिमालय को भी पार कर जाओगे, तब तुम्हें सिद्धों और चारणों से संपन्न कैलाश पर्वत मिलेगा। उसके भी आगे एक घने जंगल में तुम एक स्त्री देखोगे जो वृद्धा तथा तपस्विनी है। तुम उसका पूजन करना। उसके दर्शन के बाद ही तुम मेरी पुत्री को अपनी पत्नी बना सकते हो।

अष्टावक्र अनेक नदी, पर्वत तथा जंगल पार करते हुए राक्षसों से भरी कुबेर की नगरी में पहुंचे। कुबेर ने उनका बड़ा सत्कार किया। पश्चात उनकी आज्ञा लेकर कुबेर ने अप्सराओं को अष्टावक्र के सामने नृत्य करने का आदेश दिया,

. पति-पत्नी का सहधर्म कैसे?

क्योंकि स्वागत में यह आवश्यक था। अष्टावक्र दर्शक दीर्घा में बैठकर अप्सराओं का नाच देखने में इतने तल्लीन हुए कि उनका वहां देवताओं के वर्ष से एक वर्ष आमोद-प्रमोद में बीत गया। अंततः अष्टावक्र कुबेर से विदा होकर आगे बढ़े। जब वे निश्चित वन में पहुंचे, तो उन्होंने वहां अत्यंत रमणीय भवनों का विस्तार देखा। जब वे मुख्य भवन पर गये और उन्होंने पुकारा कि मैं एक अतिथि हूं, तो भीतर से सात सुंदरी कन्याएं निकलीं जिनको देखकर अष्टावक्र मोहित हो गये, परंतु उन्होंने किसी तरह अपने मन को सम्हाला। जब भीतर गये तब एक वृद्धा तपस्विनी को देखा। उसने उठकर आदर किया।

अष्टावक्र एक पलंग पर बैठ गये। वृद्धा ने अन्य स्त्रियों को उनके घर भेज दिया। अष्टावक्र पलंग पर लेट गये और उन्होंने वृद्धा से कहा-भद्रे! अब तुम भी सो जाओ, रात अधिक हो गयी है। वह वृद्धा भी एक पलंग पर लेट गयी, परंतु कुछ देर में ठंडक लगने का बहाना बनाकर कांपती हुई अष्टावक्र के पलंग पर आ गयी। उसने अष्टावक्र को मोहित करना चाहा, परंतु वे मोहित नहीं हुए।

दूसरे दिन उस वृद्धा ने अष्टावक्र की बड़ी सेवा की, तेल लगाया, नहलाया, खूब खिलाया-पिलाया। पुनः रात आ गयी और वृद्धा सुंदरी युवती कन्या बनकर अष्टावक्र की शय्या पर आ गयी और उसने कहा कि मैं अविवाहित कन्या हूं। आप मुझे पत्नी रूप में स्वीकारें। मैं स्वतंत्र हूं, अतएव मैं अपने को आपको समर्पित करती हूं।

अष्टावक्र ने कहा-तुम स्वतंत्र कैसे हो? कारण बताओ। तीनों लोकों में कोई स्त्री स्वतंत्र रहने योग्य नहीं है। वह कुमार अवस्था में पिता के, जवानी में पति के और बुढ़ापा में पुत्र के संरक्षण में रहती है। अतएव स्त्रियों के लिए स्वतंत्रता नहीं है।

अष्टावक्र ने कहा-तुम अपना रूप कैसे बदलती रहती हो। स्त्री ने कहा-यह सब आपकी परीक्षा लेने के लिए किया गया है। वस्तुतः अधिकतर बूढ़ी स्त्रियां भी पुरुष-संग चाहती हैं। मैंने दोनों ढंग से तुम्हें देख लिया। तुम परीक्षा में उत्तीर्ण हो। अब अपने घर जाओ।

अष्टावक्र अपने घर आये और वदान्य ऋषि से सारी बातें कह सुनायीं और उनकी कन्या सुप्रभा का पाणिग्रहण कर अपने आश्रम पर चले गये (अध्याय -)।

मीमांसा

उपर्युक्त अष्टावक्र की कथा उन्नीस से इक्कीस तीन अध्यायों में बड़े विस्तार से आयी है। इस काल्पनिक कथा में यह बात बतायी गयी है कि पुरुष दृढ़

महाभारत मीमांसा : तेरहवां-अनुशासन पर्व

संयमशील होकर एक पत्नीव्रती हो। परंतु इससे युधिष्ठिर के प्रश्न का पूर्ण उत्तर नहीं हुआ।

अष्टावक्र उत्तर दिशा की युवती से कहते हैं कि तुम स्वतंत्र कैसे हो? तीनों लोक में स्त्रियां स्वतंत्र नहीं हैं। परंतु अष्टावक्र इस इक्कीसवीं शताब्दी में आ जायं, तो स्वतः समझ जायंगे कि स्त्रियां स्वतंत्र हैं। तो भी स्त्री-देह कुछ ऐसी है कि उसे संरक्षक-पुरुष की मर्यादा में रहना चाहिए। रात के एकांत-वन में एक पुरुष बैठा रह सकता है, परंतु स्त्री का इस तरह बैठे रहना खतरे से खाली नहीं है। संरक्षण तो पुरुष को भी चाहिए फिर स्त्री को संरक्षण चाहिए ही, वह चाहे स्त्री का ही संरक्षण हो।

स्त्रियां असत्य बोलती हैं, यह भी सत्य नहीं है। स्त्री-पुरुष कोई हो, जो ढीला विवेक का होगा, वह असत्य बोलेगा।

. ब्राह्मण और तीर्थ की महिमा, सदाचार का महत्त्व

बाइसवें अध्याय में मार्कण्डेय प्रश्न करते हैं और नारद उत्तर देते हैं। इसमें अनेक प्रश्न और उत्तर युगबाह्य हैं जिसने आज अपना मूल्य खो दिया है। कुछ प्रश्न तथा उत्तर शाश्वत विचार देते हैं जैसे काम-रति और धन का प्रमाद मनुष्य को डुबा देते हैं। अहिंसा, सत्य, अक्रोध, कोमलता, इंद्रिय-संयम और सरलता धर्म के निश्चित लक्षण हैं। गुरुजनों की सेवा-पूजा करे, प्राणियों के साथ सद्व्यवहार करे, सबसे नम्रता का बरताव करे और मीठा बोले। न्यायाधीश का झूठा निर्णय देना, न्यायालय में जाकर झूठ बोलना, राजा के पास किसी की चुगुली करना और गुरु के साथ कपटव्यवहार करना ब्रह्महत्या जैसा पाप है। राजा और गाय पर चोट न पहुंचावे।

क्रोध-रहित, धर्मपरायण, सत्यनिष्ठ, इंद्रियसंयमी, अभिमानशून्य, अत्यंत सहनशील, दृढ़विचार, जितेंद्रिय, सर्वहितकारी तथा सबके साथ मैत्री भाव रखने वाले ज्ञानी को दान देना तथा सेवा करना चाहिए। ऐसे लोग दूर भी हों तो उनको बुलाकर या उनके पास जाकर उनको दान देना चाहिए।

तेइसवें अध्याय में देव तथा पितरों के कार्य एवं श्राद्ध में निमंत्रण योग्य तथा अयोग्य ब्राह्मणों का वर्णन है और नरक तथा स्वर्ग जाने वाले के लक्षण बताये गये हैं। जो ब्राह्मण पतित, जड़ तथा उन्मुक्त हैं, वे देव तथा पितृकार्य में निर्मंत्रित करने योग्य नहीं हैं। जिनके शरीर में सफेद दाग हो, जो कोढ़ी, नपुंसक, राजयक्ष्माग्रस्त, मृगीरोगग्रस्त तथा अंधा हो, ऐसे ब्राह्मण श्राद्ध में

. ब्राह्मण और तीर्थ की महिमा, सदाचार का महत्त्व

आमंत्रित करने योग्य नहीं होते। चिकित्सक (वैद्य-डाक्टर), देवलक (देवमंदिर का पुजारी), पाखंडी, सोमरस बेचने वाले, गाने-बजाने वाले, नाचने वाले, खेलकूद करने वाले, तमाशा दिखाने वाले, व्यर्थ बात बनाने वाले, पहलवानी करने वाले तथा आचरणभ्रष्ट को श्राद्ध में निमंत्रित न करे। इनके साथ अन्य भी वर्जन हैं जिनमें अधिक युगबाह्य हैं।

भूखे, समय के मारे, अभावग्रस्त तथा पीड़ित मनुष्यों की सेवा करना चाहिए, उनको जल-भोजन देना चाहिए। बड़ों की रक्षा तथा किसी प्राणी को निर्भयता प्रदान करने के लिए झूठ बोलने के अलावा झूठ बोलना पाप है। पर-स्त्रीगमन, परधनहरण नरक का रास्ता है। पुल, पौशाला, सभा तथा घर को नष्ट करना, किसी की जीविका नष्ट करना, लोगों में फूट डालना नरक जाने का रास्ता है।

अभक्ष्य-अपेय का त्याग, अहिंसा, आत्मसंयम, कोमलता, विनम्रता, सेवापरायणता, दानशीलता, मिष्ट भाषण, धैर्य, सहनशीलता आदि स्वर्ग जाने का रास्ता है।

चौबीसवें अध्याय में भी पापकर्म करने वालों की भर्त्सना की गयी है। पचीसवें अध्याय में अनेक तीर्थों के नाम लेकर उनकी महिमा का भावुकतापूर्ण बखान किया गया है। एकहत्तर () श्लोकों का यह अध्याय तीर्थ-सेवन की अतिशयोक्तिपूर्ण महिमा बताता है।

छब्बीसवां अध्याय गंगा की महिमा बताता है। इस अध्याय में एक सौ छह () श्लोक हैं। प्रश्न आया कि कौन-से देश, जनपद, आश्रम, पर्वत और नदियां सर्वश्रेष्ठ हैं। उत्तर है कि गंगा सर्वश्रेष्ठ नदी है और वह जहां से होकर बहती है, वहां के सभी देश, जनपद, आश्रम तथा पर्वत पवित्र एवं श्रेष्ठ हैं।

गंगा जी की थोड़ी महिमा सुन लें-पापी भी गंगा में नहाने से स्वर्ग जाता है। मनुष्य की हड्डी गंगा में जितने वर्ष तक पड़ी रहती है उतने हजार वर्ष तक वह जीव स्वर्ग में रहता है। गंगा की रेत भी अंग पर पड़ जाय तो स्वर्गवास होता है। गंगाजल से छूकर जो वायु शरीर में लगता है, वह सारे पाप को तत्काल नष्ट कर देता है। गंगादर्शन से स्वर्गलाभ होता है। गंगा-स्नान करने वाला मनुष्य अपनी सात पीढ़ी पूर्व की तथा सात पीढ़ी पीछे की तार देता है। मेरु पर्वत के कर्णों तथा समुद्र-जल की बूंदों को गिना जा सकता है, परंतु गंगा जी की पूरी महिमा नहीं बतायी जा सकती है।

सत्ताइस से तीस (-)वें अध्याय में ब्राह्मण-कुल की महिमा बतायी गयी है जो भावुकतापूर्ण तथा अस्वाभाविक है। एकतीस ()वें अध्याय में

महाभारत मीमांसा : तेरहवां-अनुशासन पर्व

नारद जी ने श्रीकृष्ण से ब्राह्मण की महिमा का लंबा बखान किया है किंतु इसमें सदाचारी तथा ज्ञान-वैराग्य-प्रधान महापुरुषों को पूज्य कहा गया है।

बत्तीसवें अध्याय में बाज द्वारा दौड़ाया गया कबूतर राजा शिवि की गोद में शरण लेता है। राजा शिवि अपने शरीर का मांस बाज को देकर कबूतर की रक्षा करने का काम करते हैं। इससे राजा शिवि स्वर्गलोक चले जाते हैं। यह काल्पनिक गाथा शरणागत की रक्षा करने की महत्ता बताती है।

तैंतीस से सैंतीस (-)वें अध्याय तक पुनः ब्राह्मणों की महिमा गायी गयी है और वही-वही दिलउबाऊ बातें दोहरायी गयी हैं। आन्वीक्षिकी विद्या वालों के तर्क से घबराये हुए परंपरावादी पंडित ने उन्हें भला-बुरा कहा है (अध्याय -)।

मीमांसा

अठारह पुराण और महाभारत में से छंटा जाय तो लगभग चालीस हजार श्लोक ऐसे निकलेंगे जो तीर्थ तथा गंगादि नदियों और मंत्रादि की महिमा में लिखे गये हैं जो नैतिकता को खोखला करने वाले हैं। याद रहे, कोई तीर्थ, नदी, देवता, भगवान, ईश्वर मनुष्य के जीवन के पाप काटने और उसका उद्धार करने में समर्थ नहीं है। मनुष्य को स्वयं जाग्रत होकर अपने मन, वाणी तथा कर्मों को निर्मल करना होगा।

यह बात अनेक जगह आयी है कि ब्राह्मण कुपित होकर पूरे संसार को भस्म कर सकता है, परंतु यह बात कहीं नहीं दिखी कि ब्राह्मण प्रसन्न होकर पूरे संसार को आनंद का धाम बना सकता है। भूला मन शक्ति की प्रशंसा विनाश-कार्य में करता है। यहां वह शक्ति भी झूठी है।

. स्त्रियों की चरित्र-रक्षा की जाय

अड़तीसवें अध्याय में युधिष्ठिर से प्रश्न कराया गया गया है “स्त्रियो हि मूलं दोषाणाम्” स्त्रियां ही दोषों की जड़ हैं; अतएव उनके दोष क्या हैं? भीष्म ने पंचचूडा अप्सरा तथा नारद का संवाद याद दिलाया। नारद ने कभी पंचचूडा अप्सरा से स्त्रियों का स्वभाव पूछा था। पंचचूडा ने बीस श्लोकों में स्त्रियों को काम-मोहित बताकर उनका बीभत्स नक्शा खींचा है। लेखक तो पुरुष है। उसने स्त्री के मुख से स्त्री के दोष कहलवाये हैं जो एकांगी हैं। स्त्री-पुरुष दोनों में लंपट तथा सदाचारी होते हैं।

. स्त्रियों की चरित्र-रक्षा की जाय

जब स्त्रियों को मन से अधिक ढील बताया गया, तब उन्तालीसवें अध्याय में प्रश्न आया कि ऐसी स्त्री जाति के चरित्र की रक्षा कैसे की जाय। चालीस से तैंतालीस (-) अध्यायों में इसका समाधान करने के लिए कहानी गढ़ी गयी।

देवशर्मा नाम के ऋषि थे। उनकी पत्नी का नाम 'रुचि' था। रुचि बड़ी सुंदरी थी। उस पर इंद्र मोहित था, अतएव वह अवसर खोजता था। देवशर्मा को एक यज्ञ में जाना था। वे चिंतित थे कि आश्रम में 'रुचि' की रक्षा कैसे हो? देवशर्मा के आश्रम में एक भृगुवंशी विपुल थे। वे बड़े गुरुभक्त थे। देवशर्मा ने विपुल को 'रुचि' की रक्षा में आश्रम पर छोड़ा और सावधान कर दिया कि इंद्र बूढ़ा, जवान, सुंदर, कुरूप, पशु, पक्षी, मच्छड़, भुनगा, हवा आदि बनकर आ सकता है, क्योंकि इंद्र बड़ा छली है।

देवशर्मा यज्ञ में चले गये। सुंदरी रुचि आश्रम में बैठी थी। विपुल ने सोचा कि मैं बाहर से रुचि की रक्षा नहीं कर पाऊंगा; अतएव वे अपना शरीर छोड़कर रुचि के शरीर में प्रवेश कर गये। इंद्र सुंदर रूप धरकर आया। रुचि को लुभाने लगा, किंतु विपुल ने रुचि के मन, वाणी तथा शरीर को स्तंभित कर दिया था। वह न हिलती-डुलती थी और न बोलती थी। अंततः विपुल की प्रेरणा से रुचि ने इंद्र से कहा-भोः, तुम्हें आने की क्या आवश्यकता?

विपुल रुचि के शरीर से निकलकर अपने शरीर में आ गये और इंद्र को बहुत फटकारा, अतः इंद्र लज्जित होकर लौट गया और रुचि की रक्षा हो गयी। देवशर्मा आये। प्रसन्न हुए और उन्होंने विपुल से वर मांगने के लिए आग्रह किया। विपुल ने वर मांगा कि मेरी जीवनपर्यंत धर्म में दृढ़ता बनी रहे। इसके बाद विपुल तपस्या में लग गये।

एक दिन विपुल ने निर्जन वन में देखा कि स्त्री-पुरुष का एक जोड़ा एक दूसरे का हाथ पकड़कर कुम्हार के चक्र की तरह नाच रहा है, और विवाद भी कर रहा है कि तुम जल्दी-जल्दी चल रहे हो। दोनों में झगड़ा की नौबत आ गयी और उन्होंने कहा-हम लोगों में जो झूठ बोलता है उसकी वैसी खराब गति होगी, जैसी विपुल की होने वाली है।

विपुल उक्त बातें सुनकर चौंक गया। इतने में उसने देखा कि छह मनुष्य जुआ खेल रहे हैं। उनमें से एक ने कहा-हममें से जो कोई खेल में बेईमानी करेगा, उसकी वही दुर्गति होगी जो विपुल को होने वाली है। उक्त बातें सुनकर विपुल अधिक चिंतित हो गया।

विपुल आत्ममंथन करने लगा। उसने जन्म से लेकर आज तक के अपने जीवन पर नजर डाली तो उसे कोई अपना दोष नहीं दिखा। परंतु उक्त दोनों की बातें उसे आग की तरह जलाती रहीं।

विपुल को लगा कि मैंने रुचि के शरीर में प्रवेश कर जो उनकी रक्षा की उसे गुरु जी को नहीं बताया है, यह मेरा पाप है। वस्तुतः यही विपुल का अपराध था। विपुल ने गुरु जी के पास आकर उनकी पूजा की और अपनी बात बता दी कि मैंने 'रुचि' के शरीर में प्रवेश करके उसकी रक्षा की थी। आगे विपुल ने चक्र में नाचते हुए स्त्री-पुरुष तथा छह जुआड़ियों के मुख से निकली बात बतायी।

देवशर्मा ने कहा-चक्र में नाचते स्त्री-पुरुष रात-दिन हैं और छह जुआड़ी छह ऋतुएं हैं। ये मनुष्य के हर कर्म को रात-दिन देखते रहते हैं। मनुष्य पाप करते समय समझते हैं कि हमारे कर्म को कोई देख नहीं रहा है, परंतु रात-दिन तथा छह ऋतुएं हमारे सारे कर्मों को सब समय देखते हैं। विपुल! तुमने रुचि के शरीर में प्रवेश की बात न बतायी होती, तो तुम अपराधी होते; किंतु तुमने बता दिया, इसलिए तुम दोषमुक्त हो। वस्तुतः तुमने रुचि के शरीर में प्रवेश उसकी चरित्र-रक्षा के लिए ही किया है, इसलिए तुम पुण्य के भागी हो। तुमने यह रहस्य बताया नहीं था, इसीलिए तुम्हारी अंतरात्मा कचोट रही थी। अब बता दिया, इसलिए तुम दोषमुक्त हो।

अंततः देवशर्मा, उनकी पत्नी रुचि तथा विपुल स्वर्ग में जाकर सुख भोगने लगे। भीष्म ने कहा-युधिष्ठिर! यह कथा महामुनि मार्कण्डेय ने मुझे गंगातट पर सुनायी थी। स्त्रियों में भली-बुरी दोनों होती हैं। स्त्रियां साध्वी तथा पतिव्रता हों, तो वे लोकसम्मानित तथा जगत-वंदनीया माता होती हैं। यदि असत आचरण की हों, तो कुलनाशक होती हैं। सार है कि स्त्रियों के चरित्र की रक्षा होनी चाहिए। अंततः हे नरेश! सर्वत्र मुक्ति का ही सर्वथा सम्मान किया जाना चाहिए- "सर्वथा राजशार्दूल मुक्तिः सर्वत्र पूज्यते (अनुशासन पर्व, ,)।" (अध्याय -)।

मीमांसा

कोई व्यक्ति अपना शरीर छोड़कर दूसरे के शरीर में प्रवेश नहीं कर सकता। अतएव विपुल का रुचि के शरीर में प्रवेश करने का इतना ही तात्पर्य है कि विपुल ने अपने पवित्र मनोभावों से रुचि को दृढ़ स्थिर रहने की प्रेरणा दी।

. विवाह और उत्तराधिकार पर विचार

इंद्र वेदों में चरित्रवान, वीर, साहसी तथा मायावी भी है, किंतु वह केवल प्राकृतिक शक्ति है, किंतु वेदों के काव्य में इंद्र का व्यक्तिकरण हो गया है। पीछे महाकाव्यों और पुराणों में इंद्र को व्यक्ति बनाकर चरित्रहीन बना दिया गया है। यह लेखकों की घृणित सूझ है। वेदों का इंद्र चरित्रवान है; किंतु काल्पनिक है।

. विवाह और उत्तराधिकार पर विचार

युधिष्ठिर ने कहा—दादा जी! कन्यादान के संबंध में बताने की कृपा करें। भीष्म ने कहा—समझदार कन्या वाला वर के शील-स्वभाव, सदाचार, विद्या, कुल, मर्यादा और उसकी कर्मशीलता की ठीक से परख करे। यदि वर उक्त सदगुणों से युक्त है, तो उसे कन्या प्रदान करे। इसे ब्राह्म-विवाह, अर्थात् उत्तम विवाह कहा जाता है। जहां धन देकर तथा वर-पक्ष को अनुकूल बनाकर कन्यादान किया जाता है, इसको प्राजापत्य विवाह कहते हैं। जहां माता-पिता की परवाह न करके वर-कन्या एक दूसरे को पसंद कर विवाह करते हैं, वह गांधर्व-विवाह है। जहां कन्या के माता-पिता तथा बंधु-बंधवों को धन देकर कन्या को खरीदकर विवाह किया जाता है, यह आसुर-विवाह है। जहां कन्या के बंधु-बंधवों को मार-पीटकर रोती हुई कन्या का अपहरण कर विवाह किया जाता है, यह राक्षस-विवाह है।

इस प्रकार ब्राह्म, प्राजापत्य, गांधर्व, आसुर तथा राक्षस पांच प्रकार के विवाह में प्रथम तीन को धर्मानुकूल माना जाता है और पीछे वाले दो पापमय। ब्राह्मण ब्राह्मण-कन्या, क्षत्रिय-कन्या तथा वैश्य-कन्या से विवाह कर सकता है। क्षत्रिय क्षत्रिय-कन्या तथा वैश्य-कन्या से विवाह कर सकता है, और वैश्य केवल वैश्य-कन्या से विवाह करे। सबमें पिता का ही वर्ण चलता है। कुछ लोग मानते हैं कि शूद्र की कन्या हो, और उससे प्रेम हो गया है, तो उससे विवाह किया जा सकता है, परंतु कुछ लोग इस धारणा को अच्छा नहीं मानते।

ऋतुमती होने के बाद तीन वर्ष तक कन्या के बंधु-बंधव उसका विवाह नहीं करते हैं, तो कन्या स्वयं अपने पति का चुनाव कर ले।

युधिष्ठिर ने पूछा—यदि एक मनुष्य ने विवाह की बात पक्की करके कन्या का मूल्य दे दिया हो, दूसरे ने मूल्य देने की प्रतिज्ञा करके विवाह पक्का किया हो, तीसरा उस कन्या को जबर्दस्ती ले जाने की बात कर रहा हो, चौथा कन्या के बंधु-बंधवों को अधिक धन देने का लोभ दिखाकर कन्या को ले जाना चाहता हो और पांचवां उसका पाणिग्रहण कर चुका हो, तो धर्मतः वह कन्या किसकी पत्नी मानी जाय?

भीष्म ने कहा-व्यवस्था वही उत्तम है जो मनुष्यों के लिए हितकारी हो। अच्छे विचारक मिलकर जब निर्णय कर लें कि 'यह कन्या इस वर को देना चाहिए।' तो यह व्यवस्था ही विवाह के लिए उचित है। झूठ बोलकर इस व्यवस्था को पलटना पाप है। पत्नी, पति, पुरोहित, आचार्य, शिष्य तथा उपाध्याय भी यदि उक्त व्यवस्था के विरुद्ध झूठ बोलते हैं, तो वे भी दंड के भागी हैं। ऐसे लोग भी हैं जो उन्हें दंड के भागी नहीं मानते।

भाई-बंधु जब कन्या को किसी वर के साथ ब्याह दिये, तो यह धर्मपूर्वक विवाह है। कन्या के बंधु-बंधव को धन देकर यदि कन्या खरीद ली गयी है, तो यह भी धर्मपूर्वक है। कन्या के माता-पिता तथा भाई-बंधु की अनुमति पाकर वर-वधू के विवाह में मंत्रोच्चार सही माना जाता है। बिना अनुमति के मंत्रोच्चार निरर्थक है। पति-पत्नी में मंत्रोच्चारणपूर्वक जो परस्पर प्रतिज्ञा होती है कि एक दूसरे को जीवनपर्यंत निभायेंगे, यही श्रेष्ठ विवाह है। इसमें माता-पिता तथा बंधु-बंधवों का यदि समर्थन है, तो अति उत्तम है।

युधिष्ठिर ने पूछा-पितामह! यदि कन्या का वर चुन लिया गया हो, उससे शुल्क भी ले लिया गया हो। पीछे एक ऐसा वर मिले जो धर्म, अर्थ और काम से संपन्न अत्यंत योग्य हो, तो क्या पीछे वाले को टुकरा दिया जाय, झूठ बोल दिया जाय? पहले वाले को टुकराना वचन-भंग दोषयुक्त है और पीछे वाले को टुकराना कन्या के हित की हानि करना है।

भीष्म ने कहा-मूल्य दे देने से विवाह का अंतिम निर्णय नहीं माना जाता है। आगे परिवर्तन की संभावना रहती है। इसीलिए मूल्य देने वाला, यदि विवाह नहीं हुआ तो मूल्य वापस नहीं मांगता। सज्जन मनुष्य कभी-कभी मूल्य लेकर भी कन्यादान नहीं करते। कन्या के भाई-बंधु वर-पक्ष से मूल्य तभी मांगते हैं जब वर-पक्ष में कुछ कमी रहती है। कन्या के लिए वर-पक्ष से आभूषण मांगकर जो कन्यादान किया जाता है वह न मूल्य है और कन्या-बिक्री; वह तो कन्या के लिए है जो लौटकर वर के ही पास जाता है। जो कन्या वाले अलग-अलग मनुष्यों से कहते हैं-मैं आपको अपनी कन्या दूंगा, जो कहते हैं नहीं दूंगा, और जो कहते हैं अवश्य दूंगा, उनकी ये सारी बातें कन्या देने के पहले नहीं कही हुई के समान हैं। कन्यादान के पहले कन्या मांगना चाहिए, यह नीति है। इसलिए पाणिग्रहण के पहले वर और कन्या आपस में चुनाव करने के लिए स्वतंत्र हैं। महर्षियों का मत है कि अयोग्य वर को कन्या नहीं देना चाहिए। वर-वधू की योग्यता का मिलान होने से दोनों को संतोष होता है और संतान की सुयोग्यता होती है। कन्या के क्रय-विक्रय में बहुत दोष है, इस तथ्य को तुम

. विवाह और उत्तराधिकार पर विचार

धीरे से स्वयं समझ जाओगे। केवल मूल्य दे देने से विवाह का अंतिम निर्णय नहीं हो जाता है। पहले भी ऐसा नहीं हुआ था। मैं स्वयं विचित्रवीर्य के विवाह के लिए मगध, काशी तथा कौशल के वीरों को पराजित कर काशिराज की तीन पुत्रियों का अपहरण कर लाया था। उनके नाम थे अंबा, अंबिका तथा अंबालिका। उनमें से अंबा अपना हाथ शाल्वराज के हाथ में दे चुकी थी और मन में उसको अपना पति मान चुकी थी। इसलिए चाचा वाह्लीक के समझाने से मैंने अंबा को शाल्वराज के पास भेज दिया था। शेष अंबिका और अंबालिका जिनका शुल्क काशिराज के वरपक्ष से मिल गया था चाचा की आज्ञा से मैंने विचित्रवीर्य को ब्याह दिया।

चाचा वाह्लीक ने कहा था कि मूल्य देने मात्र से विवाह का पूर्ण निर्णय माना जाय, पाणिग्रहण से नहीं, तो स्मृति का यह कथन व्यर्थ होगा कि कन्या का पिता एक वर से शुल्क ले लेने पर भी दूसरे किसी गुणवान वर को अपनी कन्या दे सकता है। शुल्क से विवाह का निर्णय होता है, पाणिग्रहण से नहीं, इस मत का धर्मज्ञ मनुष्य प्रमाण नहीं मानते। क्रय और शुल्क धर्म नहीं है। शुल्क देने वाले को कन्या नहीं देना चाहिए और जो कन्या बेची जा रही हो, उसके साथ विवाह नहीं करना चाहिए। पत्नी खरीदने-बेचने का जानवर नहीं है। दासियों को बेचने-खरीदने वाले लोभी और पापात्मा हैं। ऐसे ही लोगों में पत्नी को बेचने तथा खरीदने की निष्ठा होती है।

वस्तुतः उत्तम वर को कन्या देना चाहिए। इसके विपरीत कोई विचार मन में नहीं लाना चाहिए। मूल्य देने वाला यदि जीवित हो, तो भी समझदार लोग सुयोग्य वर को अपनी कन्या देते हैं। जो सुयोग्य, वंश के अनुरूप, माता-पिता-भाई द्वारा दी गयी हो, ऐसी कन्या को ही समझदार ग्रहण करते हैं (अध्याय)।

पैतालीसर्वे अध्याय में युधिष्ठिर ने पूछा है-पितामह! जिस कन्या का मूल्य ले लिया गया हो, परंतु मूल्य देने वाला परदेश चला गया हो, और उसके भय से दूसरा व्यक्ति भी उस कन्या का वरण करने का साहस न करता हो, तो ऐसी स्थिति में कन्या का पिता क्या करे?

भीष्म ने कहा-राजन! यदि संतानहीन धनी व्यक्ति से कन्या का मूल्य लिया गया है तो उसके परदेश से लौटने तक उसकी प्रतीक्षा करे और अपनी कन्या की रक्षा करे। खरीदी हुई कन्या का मूल्य जब तक लौटा नहीं दिया जाता तब तक वह कन्या मूल्य देने वाले की ही है। सावित्री ने पिता से अनुमति लेकर अपने चुने हुए पति के साथ अपना संबंध स्थापित किया था। उसके इस कार्य

को कुछ लोग अच्छा कहते थे, किंतु कुछ लोग इसे अच्छा नहीं कहते थे। जनक के नाती सुक्रतु ने कहा था कि पति-पत्नी का संबंध गृहस्थी रूपी गाड़ी चलाने के लिए होने से घनिष्ठ है। यह केवल विलास की वस्तु नहीं है।

युधिष्ठिर ने पूछा-पितामह! पिता के लिए पुत्री भी पुत्र के समान है, फिर पुत्र की तरह उसका धन में अधिकार क्यों नहीं माना जाता? भीष्म ने कहा-पुत्री को जो दहेज मिलता है, वह उसी का अधिकार है। यदि पिता के पुत्र नहीं है, तो उसके धन का अधिकारी दौहित्र (पुत्री का पुत्र-नाती) ही है। यदि पिता ने किसी लड़के को गोद लिया है, तो उसकी अपेक्षा अपनी सगी पुत्री ही पिता के धन को पाने का अधिकार रखती है। जो कन्याएं शुल्क लेकर बेच दी गयी हैं उनसे पैदा होने वाले लड़के केवल अपने पिता के ही धन को पाने के अधिकारी होते हैं। वे नाना के धन को पाने के अधिकारी हों ऐसा मुझे युक्तिसंगत नहीं लगता। जो लोग पुत्र या पुत्री को बेचते हैं, वे नरक में पड़ते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि एक गाय तथा एक बैल विवाह में शुल्क लिया जा सकता है, परंतु मूल्य थोड़ा लिया जाय या अधिक, उतने ही में कन्या को बेचना ही हुआ। यद्यपि कुछ लोग ऐसा करते हैं, परंतु यह अच्छा नहीं है। दूसरे में भी लोकाचार की अनेक प्रवृत्तियां देखी जाती हैं। बलात्कार तो सब प्रकार से पाप है। किसी दूसरे मनुष्य को भी नहीं बेचना चाहिए, फिर अपनी संतान को बेचने की बात कितनी घृणित है। अधर्ममूलक धन पतन का कारण है।

छियालीसवें अध्याय में भीष्म कहते हैं-युधिष्ठिर! कन्या के भाई-बंधु यदि वर वालों से कन्या के वस्त्र-आभूषण के लिए धन ग्रहण करते हैं और उसमें से वे स्वयं कुछ भी नहीं लेते, तो यह कन्या का विक्रय नहीं है। यह कन्या का सत्कार मात्र है। यह सारा धन जो वर-पक्ष से प्राप्त है उसे कन्या को ही अर्पित कर देना चाहिए। पिता, भाई, श्वसुर तथा देवरों का कर्तव्य है कि वे नववधू का सत्कार करें। यदि स्त्री को संतोष नहीं दिया जाता है, तो वह अपने पति को प्रसन्न नहीं कर सकती और संतान की उन्नति नहीं हो सकती। इसलिए स्त्रियों का सदैव सत्कार-दुलार होना चाहिए। जिस घर में स्त्रियों का आदर होता है, वह घर सुखी रहता और जहां अनादर होता है वहां सुख-शांति नहीं रह सकती। मनु ने कहा-स्त्रियां अबला हैं, थोड़े वस्त्रों में काम चलाने वाली, निष्काम भाव से सेवा करने वाली, सत्यपरायण, ईर्ष्यालु, मान चाहने वाली, अत्यंत कोप करने वाली, पति से मैत्री रखने वाली तथा सरल होती हैं। स्त्रियां आदर पाने के योग्य हैं। स्त्रियां धर्म की सिद्धि में कारण हैं। संतान, उनका लालन-पालन, लोकयात्रा का प्रसन्नतापूर्वक निर्वाह स्त्रियों के अधीन है। विदेहराज जनक की पुत्री ने एक

. विवाह और उत्तराधिकार पर विचार

श्लोक गाया था, जिसका सारांश है—स्त्री पति-सेवा से सफल हो सकती है। स्त्री का कुमार अवस्था में उसका पिता रक्षक है, जवानी में पति और बुढ़ापा में पुत्र। इसलिए स्त्री को कभी स्वतंत्र नहीं रहना चाहिए। स्त्रियां ही गृह-लक्ष्मी हैं। जो पुरुष उन्नति चाहे वह उनका सत्कार करे। अपने वश में रखकर उनका पालन करने से स्त्री लक्ष्मी का स्वरूप हो जाती है।

सैंतालीस ()वें अध्याय में युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह! ब्राह्मण के लिए चार पत्नियों को रखने का विधान है—ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या तथा शूद्रा। इनमें विलासी के लिए शूद्रा-पत्नी केवल विलास के लिए है। इनसे जो पुत्र पैदा हों उनमें से कौन क्रमशः पैतृक-धन पाने का अधिकारी है? किस पुत्र को पिता के धन में कौन-सा भाग मिलना चाहिए।

भीष्म ने कहा—ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य द्विजाति हैं, इसलिए ब्राह्मण इन तीनों में अपना विवाह करे। अन्याय से, लोभ से अथवा कामना से शूद्रा भी ब्राह्मण की पत्नी होती है, किंतु शास्त्रों में इनका कहीं विधान नहीं है। ब्राह्मणी पत्नी से पैदा हुआ पुत्र पिता के धन में से अच्छी-अच्छी चीजें छांटकर अपने अधिकार में कर ले। इसके बाद ब्राह्मण-पिता के धन का दस भाग करे। उसमें से चार भाग ब्राह्मणी-पुत्र पुनः ले ले, तीन भाग क्षत्रिया का पुत्र ले, वैश्या का पुत्र दो भाग ले। शूद्रा-पुत्र को तो ब्राह्मण-पिता के धन में भाग पाने का अधिकार नहीं है, परंतु धन का एक अंश उसे भी दे देना चाहिए। जो समान वर्ण के पुत्र हों, उनमें धन बराबर बटना चाहिए। शूद्रा से उत्पन्न पुत्र ब्राह्मण नहीं होता है, किंतु अन्य तीनों वर्णों में पैदा हुए पुत्र ब्राह्मण माने जाते हैं। ब्राह्मण से पैदा शूद्रा का पुत्र अपने पिता के धन में दसवां हिस्सा ले ले—“हरेच्च दशमं भागं शूद्रापुत्रः पितुर्धनात् (अनुशासन, ,)।” लेकिन पिता के देने पर ही उसे लेना चाहिए। बिना दिये उसे लेने का अधिकार नहीं है। परंतु पिता को शूद्रा-पुत्र को भी धन देना चाहिए। दया ही सबसे बड़ा धर्म है। यह समझकर उसे धन का दसवां भाग देना चाहिए। ब्राह्मण को अन्य वर्णों की स्त्रियों से यदि कोई पुत्र न हो, तो भी शूद्रा-पुत्र को दसवें भाग से अधिक धन नहीं देना चाहिए।

जब ब्राह्मण के पास तीन वर्ष तक निर्वाह होने से अधिक धन इकट्ठा हो जाय, तब वह यज्ञ करे। धन का व्यर्थ संग्रह न करे। स्त्री को तीन हजार से अधिक लागत का धन नहीं देना चाहिए। जब पति धन दे, तभी वह उसका उपभोग करे। पति द्वारा दिये हुए पत्नी के धन को पुत्र लेने की इच्छा न करे। ब्राह्मणी को उसके पिता द्वारा जो धन मिला हो, उस धन को उसकी पुत्री ले

सकती है। पुत्री और पुत्र समान हैं। धर्मपूर्वक धनोपार्जन, संग्रह तथा व्यय करे। उसे व्यर्थ न करे।

युधिष्ठिर के पूछने पर भीष्म ने बताया कि क्षत्रिय के धन का आठ भाग करे। क्षत्रिया-पुत्र उसमें से चार भाग ले और पिता की युद्ध सामग्री ले ले। शेष में तीन भाग वैश्या-पुत्र ले और शेष आठवां भाग शूद्रा-पुत्र ले। वह भी पिता के देने पर, अन्यथा उसका अधिकार नहीं है।

वैश्य के धन को पांच भागों में विभक्त करे। उसमें से चार भाग वैश्या-पुत्र ले और पांचवां भाग शूद्रा का पुत्र ले। वह भी पिता के देने पर ले। अन्यथा उसका कोई अधिकार नहीं है। वस्तुतः तीनों वर्णों से उत्पन्न शूद्र सदैव धन न देने योग्य ही होता है-*त्रिर्भिवर्णैः सदा जातः शूद्रोऽदेयधनो भवेत्* (,)।

शूद्र की केवल शूद्रा एक ही पत्नी होती है। उसके चाहे सौ भाई हों, पिता के धन में सबका समान अधिकार है। सभी वर्णों के समान वर्ण की स्त्री से उत्पन्न हुए पुत्रों का पिता के धन में समान अधिकार होता है।

ज्येष्ठ पुत्र का भाग ज्येष्ठ होता है। उसे थोड़ा अधिक मिलता है। पहले की विवाही स्त्री से उत्पन्न पुत्र धन का भाग कुछ अधिक पाता है। सभी वर्णों में ज्येष्ठ, मध्यम तथा कनिष्ठ पुत्र को धन के भाग में क्रमशः कम अंश होता है (अध्याय -)।

मीमांसा

ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य शूद्रा को विलास के लिए पत्नी बना ले, परंतु उसके पुत्र को दया करके थोड़ा धन दे, यह क्रूरतापूर्ण विधान था। वस्तुतः किसी भी वर्ण की पुत्री हो, जब पुरुष की पत्नी हो गयी तब उससे उत्पन्न सब संतान पिता के धन में समान भागीदार हैं। यही आज का विधान है और यही सच है। ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य से पैदा शूद्रा-पुत्र धन पाने का अधिकारी नहीं, यह अमानवीय एवं क्रूरतापूर्ण विधान था। ईसा की बीसवी-इक्कीसवीं सदी के स्वतंत्र भारत में मानव मात्र के लिए समान विधान बन गया है जो मानवतापूर्ण है। पहले के अनेक मानदंड टूटकर आज स्वस्थ मानदंड स्थापित हो गये हैं।

जब चारों वर्णों की स्त्रियों से बच्चे पैदा किये जाते हैं, तब उनमें शूद्रा केवल विलास के लिए कहां हुई? सब स्त्रियां विलास तथा संतान उत्पन्न करने

. वर्णसंकर-विवरण, अंततः मानवता की विजय

के लिए हुई। विलास घरफूंक तमाशा है। संतान उत्पन्न करना ही गृहस्थ-कर्तव्य है।

. वर्णसंकर-विवरण, अंततः मानवता की विजय

अड़तालीस ()वें अध्याय में वर्णसंकर संतान की उत्पत्ति का वर्णन है। थोड़ी बानगी लें। ब्राह्मण द्वारा ब्राह्मणी और क्षत्रिया-स्त्री से उत्पन्न संतान ब्राह्मण ही हैं। जो वैश्या तथा शूद्रा-स्त्री से पैदा किये जाते हैं, वे माता की जाति के वैश्य एवं शूद्र माने जाते हैं। ब्राह्मण द्वारा शूद्रा से उत्पन्न पुत्र शूद्र से पर (ऊंचा) है। इसलिए उसे 'पराशव' कहते हैं। क्षत्रिय द्वारा क्षत्रिया तथा वैश्या-स्त्री से उत्पन्न पुत्र क्षत्रिय ही हैं। क्षत्रिय द्वारा शूद्रा से उत्पन्न पुत्र शूद्र है, परंतु क्षत्रिय द्वारा उत्पन्न होने से उसकी 'उग्र' संज्ञा है। वैश्य द्वारा वैश्या तथा शूद्रा-स्त्री से उत्पन्न पुत्र वैश्य ही होता है। शूद्र द्वारा शूद्रा से उत्पन्न पुत्र शूद्र ही होता है (इस दृष्टि से केवल शूद्र ही वर्णसंकर रहित शुद्ध है)।

शूद्र द्वारा ब्राह्मणी, क्षत्रिया तथा वैश्या-स्त्रियों से जो संतान पैदा होती है उसे वर्ण बहिष्कृत मान लिया गया है। क्षत्रिय पुरुष द्वारा ब्राह्मणी-स्त्री से उत्पन्न पुत्र 'सूत' जाति का मान लिया गया है। वह स्तुतिकर्म तथा रथीकर्म वाला होता है। वैश्य पुरुष द्वारा ब्राह्मणी-स्त्री से पैदा पुत्र 'वैदेहक' कहलाता है। इससे अंतःपुर की रक्षा आदि का काम लिया जाता है। उसे 'मौदगल्य' भी कहते हैं। शूद्र पुरुष द्वारा ब्राह्मणी-स्त्री से उत्पन्न पुत्र भयंकर चांडाल होता है जो गांव के बाहर बसता है। यह वध्य मनुष्यों को प्राणदंड देने का काम करता है।

वैश्य पुरुष द्वारा क्षत्रिया-स्त्री से उत्पन्न पुत्र 'वंदी' और 'मागध' कहलाता है। शूद्र पुरुष द्वारा क्षत्रिया-स्त्री से उत्पन्न पुत्र निषाद होते हैं जो मछली मारने तथा नाव चलाने वाले होते हैं। शूद्र-पुरुष द्वारा वैश्या-स्त्री से उत्पन्न पुत्र 'आयोगव' कहलाता है। वह बड़ई का काम करता है। ब्राह्मण को उससे दान नहीं लेना चाहिए। इस प्रकार नौ वर्णसंकर जातियां हुई-अंबष्ठ, पराशव, उग्र, सूत, वैदेहक, चांडाल, मागध, निषाद और आयोगव। ये नवों जातियां अपनी जाति की या अपने से नीची जातियों की स्त्रियों से जो पुत्र पैदा करते हैं, वे पिता की ही जाति की मानी जाती हैं। जब एक जाति का अंतर करके नीची जाति की स्त्री से पुत्र पैदा करते हैं तब वे पुत्र पिता की जाति से हीन जाति के माने जाते हैं।

आगे इन वर्णसंकर जातियों के परस्पर घालमेल होने से नाना जातियों का पैदा होना बताया गया है। परंतु अंत में यह बताया गया कि ये लोग गौ-ब्राह्मण

महाभारत मीमांसा : तेरहवां-अनुशासन पर्व

की सहायता करें, क्रूर कर्म त्याग दें, सब पर दया करें, सत्य बोलें, दूसरों के अपराध को क्षमा करें और स्वयं कष्ट सहकर दूसरों की रक्षा करें, तो इनकी भी पारमार्थिक उन्नति हो सकती है। आगे कहा गया कि आचरण के अलावा मनुष्य की सही पहचान का कोई साधन नहीं है।

“ऊंची जाति का मनुष्य यदि शील-सदाचार से हीन है, तो उसका सत्कार नहीं करना चाहिए, परंतु शूद्र भी यदि धर्म का ज्ञाता और सदाचारी है तो वह परम पूज्य है।” यथा-

ज्यायांसमपि शीलेन विहीनं नैव पूजयेत् ।

अपि शूद्रं च धर्मज्ञं सद्वृत्तमभिपूजयेत् ,

इसी विषय के क्रम में अगला उनचास ()वां अध्याय है (अध्याय -)।

मीमांसा

ऊपर आपने देखा कि नाना प्रकार के कल्पित वर्ण और जातियों से उत्पन्न संतानों को कितनी ऊंची-नीची श्रेणियों में बांटा गया है और उन्हें नीच और ऊंच कहा गया जो केवल अहंकार का प्रदर्शन है और अहंकार की जननी अविद्या एवं अज्ञान है। मानवता का निर्णय है कि मनुष्य की मौलिकता एक है। काला, गोरा, लाल आदि होना जलवायु आदि का प्रभाव है। श्रीकृष्ण, वेदव्यास आदि काले या घनश्याम ही थे। श्री राम भी सांवले थे। मनुष्य मनुष्यता को समझे। इस तथ्य को संत कबीर ने ठीक से समझा था और उन्होंने उसकी वकालत स्पष्ट तथा निर्भीक स्वर में की थी। उसी मानवता के आधार पर आज भारत सरकार के कानून बने हैं। दफ्तर में कागज-पत्र का काम करने से लेकर टट्टी साफ करने तक का काम पूजा है और असली पूजा है। वैदिक ऋषि सभी कर्मकर हैं। वे हल चलाते हैं, शिल्प का काम करते हैं, कपड़े बुनते हैं, दवाई कूटते हैं और इन कामों को लेकर कोई नीच नहीं कहलाता है। स्मृति, पुराण, महाकाव्य के ग्रंथ जब बने, तब झूठी जाति-पांति एवं वर्ण को लेकर भयंकर विषमता थी। इसीलिए इन ग्रंथों में मानवता-विरोधी बातें आती हैं। परंतु इनके लेखक भी बीच-बीच में तो सत कह ही देते हैं।

ऊपर आप पढ़े ही- *ज्यायांसम्-अपि*-बड़ी मानी हुई जाति में पैदा होने पर भी; *शीलेन विहीनम्*-शील-सदाचार से हीन होने से; *न-एव पूजयेत्-पूजने* योग्य नहीं ही है। *च शूद्रम् अपि*-और शूद्र होने पर भी यदि; *धर्मज्ञम्*

. गाय की महिमा में च्यवन मुनि, मछुआरे तथा नहुष की लपेट

सद्वृत्तम्-धर्म का ज्ञाता और सदाचारी है, तो; अभि-पूजयेत् -अत्यंत पूजनीय है। जय मानवता!

. गाय की महिमा में च्यवन मुनि, मछुआरे तथा नहुष की लपेट

आगे गौ की महिमा बतायी गयी है। भृगुवंशी च्यवन ऋषि गंगा-यमुना-संगम के जल में पड़कर साधना कर रहे थे। कुछ निषादों ने मछली मारने के लिए वहां जाल डाला। मछलियों के साथ च्यवन ऋषि भी जाल में फंसकर बाहर आ गये। निषाद लोग मुनि को अपने जाल में मछलियों के साथ फंसा देखकर घबरा गये। उन्होंने च्यवन मुनि से कहा-महाराज! हम आपकी क्या सेवा करें?

च्यवन ने कहा-निषादो! मैं मछलियों के साथ अपना रक्षण चाहता हूं या उनके साथ अपने प्राणों का त्याग। निषाद घबराकर राजा नहुष के पास गये और सब बातें उनसे कहीं। राजा नहुष अपने पुरोहित तथा मंत्रियों के साथ ऋषि के पास गये और उन्होंने उनसे कहा-मैं आपकी क्या सेवा करूं?

च्यवन ने कहा-इन मछुआरों ने मछलियों के साथ मुझे फंसाकर जल में से बड़े परिश्रम से निकाला है। इसलिए इन्हें आप मछलियों के साथ मेरा भी मूल्य दे दीजिए।

राजा नहुष ने अपने पुरोहित को कहा-इन मछुआरों को एक हजार रुपये दे दो। च्यवन ने कहा-क्या मेरी कीमत मात्र एक हजार रुपये है? राजा ने पुरोहित को कहा-मछुआरों को एक लाख रुपये दो। च्यवन ने पुनः कहा-क्या मेरा मूल्य केवल एक लाख रुपये है? राजा ने एक करोड़ रुपये देने की बात कही, फिर अपना आधा राज्य मछुआरों को देने की बाद कही; किंतु च्यवन ने अपना मूल्य उसको नहीं माना।

इतने में फल-मूल खाने वाले एक दूसरे वनवासी मुनि आ गये जो गाय के पेट से पैदा हुए थे। उन्होंने राजा नहुष से कहा-गाय का कोई मूल्य नहीं दे सकता। इसलिए एक गाय देकर च्यवन मुनि को खरीद लीजिए। राजा नहुष ने कहा-च्यवन मुनि! मैंने एक गाय देकर आपको खरीद लिया है। अब आप उठने की कृपा कीजिए। फिर तो च्यवन ऋषि की कृपा से तथा गोदान के प्रभाव से मछलियों के साथ सारे मल्लाह स्वर्ग को चले गये। यह प्रयागराज के संगम की घटना है (अध्याय -)।

मीमांसा

यह अजीबोगरीब कहानी गाय की महिमा में गढ़ी गयी है। दूसरे मुनि को गाय के पेट से पैदा हुआ ही बता दिया गया है जो असंभव है। जानवर के पेट से मनुष्य नहीं पैदा होता।

. विश्वामित्र की विशेषता

युधिष्ठिर ने पूछा-पितामह! परशुराम ब्राह्मण थे और विश्वामित्र क्षत्रिय, किंतु परशुराम में कैसे क्षत्रियत्व आ गया और विश्वामित्र में कैसे ब्राह्मणत्व आ गया?

भीष्म ने कहा-यह पुराना इतिहास है। पहले की बात है, भृगुपुत्र च्यवन को यह मालूम हुआ कि हमारे वंश में कुशिक वंश की कन्या के संबंध से क्षत्रियत्व का महान दोष पैदा होगा। इसलिए वे कुशिक-वंश को भस्म करने के लिए राजा कुशिक के पास गये और उन्होंने उनसे कहा-‘नरेश! मैं तुम्हारे घर में कुछ दिन रहना चाहता हूँ।’

राजा ने सहर्ष स्वीकार किया। उन्हें भोजन कराया और एक महल में शय्या पर विश्राम करने का आग्रह किया। च्यवन लेट गये और उन्होंने राजा कुशिक तथा उनकी पत्नी से कहा-तुम दोनों मेरे पैर दबाते रहना और मुझे जगाना नहीं। राजा-रानी च्यवन के पैर दबाते रहे और वे केवल एक करवट से इक्कीस दिन सोते रहे। इसके बाद वे अपने आप उठे और बिना कुछ कहे-सुने भवन से बाहर निकल गये। यहां तक कि वे राजा-रानी की तरफ देखे भी नहीं। राजा-रानी के देखते-देखते च्यवन अंतर्धान हो गये।

राजा-रानी इक्कीस दिनों के भूखे-प्यासे च्यवन मुनि को खोजने लगे। जब खोजकर थक गये तब राजभवन में लौट आये, तो उन्होंने देखा कि च्यवन पलंग पर सोये हैं। इससे राजा-रानी को विस्मय हुआ। उनका मन प्रसन्न हुआ, और पुनः दोनों मुनि के पैर दबाने लगे। च्यवन मुनि अबकी बार दूसरी करवट से लेटकर सो गये और पुनः इक्कीस दिन सोते रहे। राजा-रानी उनके पैर दबाते रहे, किंतु उनके मन में विकार नहीं आया।

इक्कीस दिन पर मुनि जागे और उन्होंने राजा-रानी से कहा कि तेल लाकर मेरे शरीर में लगाओ। दोनों उनके शरीर में तेल लगाते रहे, किंतु मुनि ने यह नहीं कहा कि बस, रहने दो।

बहुत देर के बाद मुनि उठे और उन्होंने कहा कि स्नान करूंगा। राजा ने स्नान का प्रबंध किया, परंतु मुनि उसकी अवहेलना करके अंतर्धान हो गये।

. विश्वामित्र की विशेषता

इतने में देखा कि मुनि स्नान करके सिंहासन पर बैठे हैं। राजा-रानी प्रसन्न हुए। यद्यपि वे भूख-प्यास से दुर्बल हो गये थे, तथापि प्रसन्न मन होकर वे मुनि के सामने अनेक प्रकार के व्यंजन परोसे। च्यवन ने उस भोजन-सामग्री तथा आसन-शय्या में आग लगा दी, किंतु राजा-रानी को क्रोध नहीं हुआ। च्यवन मुनि पुनः अंतर्धान हो गये। राजा-रानी रात भर उनकी प्रतीक्षा में खड़े रह गये, परंतु उन्हें क्रोध नहीं हुआ। च्यवन फिर प्रकट हो गये।

च्यवन ने राजा-रानी से कहा-तुम दोनों रथ में जुतकर उसे खींचो, मैं यात्रा करूंगा। साथ-साथ राजकोष ले चलो, मैं उसे जनता में लुटाऊंगा। राजा-रानी रथ खींचने लगे। च्यवन मुनि रथ पर बैठे। पीछे राजकोष चला। च्यवन ने राजा-रानी को चाबुक से मार-मारकर रक्तरंजित कर दिया। साथ-साथ जनता में धन लुटाते रहे। राजा-रानी पचास दिनों से कुछ खाये-पीये नहीं थे। वे थरथर कांप रहे थे, किंतु च्यवन का रथ खींच रहे थे।

अंततः च्यवन मुनि ने रथ से उतरकर राजा-रानी से कहा-मैं तुम दोनों से बहुत प्रसन्न हूँ। तुम दोनों मुंहमांगा वर मांग लो। उन्होंने राजा-रानी की पीठ पर हाथ फेरा और वे चंगे हो गये। च्यवन ने कहा-राजन! मैं इस गंगातट पर कुछ समय रहूंगा। तुम लोग घर जाओ और कल आना।

राजा-रानी दोनों स्वस्थ और सुंदर हो गये और अपने राजभवन चले गये। जब वे दूसरे दिन गंगातट पर आये, तो उन्होंने देखा कि वहां सोने-चांदी, हीरे, मणि-मूंगे से सजे राजभवन, बावड़ियां तथा नाना भोग-विलास की वस्तुएं फैली हैं। राजा-रानी को आश्चर्य हुआ कि यह हम स्वप्न देख रहे हैं कि हमारे चित्त का भ्रम है अथवा सच है। उन्होंने देखा कि एक मणिमय विमान पर च्यवन मुनि लेटे हुए हैं। इतने में मुनि अंतर्धान हो गये। फिर उन्होंने देखा कि मुनि वन में चटाई पर लेटे हैं। सारा ऐश्वर्य गायब हो गया है।

राजा कुशिक ने रानी से कहा-सच है, राज्य से तपस्या श्रेष्ठ है। देखो, च्यवन मुनि अपने तप के बल से क्या-क्या कर देते हैं। संसार में ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ हैं। च्यवन मुनि राजा-रानी पर प्रसन्न होकर उनसे विदा मांगने लगे कि अब मैं जाना चाहता हूँ। मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम जो वर मांगना चाहते हो वह मांग लो।

राजा ने कहा-भगवन! मैं आपके पास वैसे रहा हूँ जैसे कोई धधकती आग के बीच खड़ा हो। मैं ऐसी दशा में रहकर जलकर भस्म नहीं हुआ, यही मेरे लिए बड़ी बात है। यही मैंने बड़ा वर प्राप्त कर लिया।

राजा ने कहा-भगवन! इतने दिनों तक आपने मेरे घर पर क्यों निवास किया? इक्कीस दिनों तक एक करवट से सोते रहना, बिना कुछ बोले उठकर चल देना, सहसा अंतर्धान हो जाना, फिर इक्कीस दिनों तक दूसरी करवट से सोते रहना, उठने पर तेल की मालिश कराना, चल देना, महल के भोजन-वस्त्रों में आग लगाना, रथ पर सवार होकर नगर में घूमना, धन लुटाना, दिव्य वन तथा महल-ऐश्वर्य का दर्शन कराना। ये सबका क्या कारण है?

च्यवन मुनि ने कहा-एक दिन देवताओं की सभा में ब्रह्मा जी ने कहा था कि ब्राह्मण तथा क्षत्रियों में विरोध होने से दोनों वंशों में संकरता आ जायगी। उनके मुंह से सुना था कि तुम्हारे वंश की एक कन्या से मेरे वंश में क्षत्रिय-तेज का संचार होगा। तुम्हारा एक पौत्र, विश्वामित्र ब्राह्मण-तेज से संपन्न पराक्रमी होगा। यह बात सुनकर मैं तुम्हारे कुल का विनाश करने के लिए आया था। मैं कुशिक वंश की जड़ समाप्त कर देना चाहता था, परंतु तुम्हारी इतनी कसौटी करने के बाद भी तुम्हारे में कोई दोष नहीं पाया।

राजन! यह सब मैंने अपने तप और धर्म का प्रभाव दिखाने के लिए किया है। तुम ब्राह्मण होना चाहते हो। वस्तुतः ब्राह्मण होना दुर्लभ है। ब्राह्मण होने की अपेक्षा ऋषि होना कठिन है और ऋषि होने से तपस्वी होना कठिन है। तुम्हारी यह इच्छा पूर्ण होगी। कुशिक से कौशिक नामक ब्राह्मणवंश प्रचलित होगा। तुम्हारा पुत्र गाधि होगा और गाधि का पुत्र विश्वामित्र। विश्वामित्र ब्राह्मण हो जायगा। तुमसे आगे तीसरी पीढ़ी इस प्रकार ब्राह्मण हो जायगी।

क्षत्रिय लोग भृगुवंशी ब्राह्मणों के यजमान हैं। परंतु इनमें दैवसंयोग से फूट पड़ जायगी। भृगुवंशियों का संहार हो जायगा। गर्भ के बच्चे तक काट डाले जायेंगे। इसके बाद मेरे वंश में 'ऊर्व' नामक महा तेजस्वी बालक होगा। वह भार्गव-वंश को पुनः बढ़ायेगा। 'ऊर्व' के पुत्र ऋचीक होंगे और ऋचीक के पुत्र जमदग्नि होंगे। ऋचीक तुम्हारे कुल की उन्नति के लिए तुम्हारे वंश की कन्या का पाणिग्रहण करेंगे। तुम्हारी पौत्री तथा गाधि की पुत्री को पाकर ऋचीक क्षत्रिय धर्मवाले ब्राह्मण जातीय पुत्र को उत्पन्न करेंगे। ऋचीक तुम्हारे कुल में राजा गाधि को एक महान तपस्वी और परम धार्मिक पुत्र प्रदान करेंगे, जिसका नाम विश्वामित्र होगा। इस प्रकार तुम्हारी तीसरी पीढ़ी में तुम्हें ब्राह्मणत्व प्राप्त हो जायगा और तुम भृगुवंशियों के संबंधी हो जाओगे।

राजा कुशिक यह सब सुनकर प्रसन्न हो गये और कहा 'ऐसा ही हो।' च्यवन मुनि ने कहा-ऐसा ही होगा (अनुशासन पर्व, अध्याय -)।

. दान और गायों की महिमा

मीमांसा

भृगुवंशियों ने महाभारत में अपने वंश की महिमा बढ़ाने के लिए बहुत धरघुसेड़ किया है। पीछे तीसरे संदर्भ में विश्वामित्र का महत्त्व देखें। ऋग्वेद एवं वेदों के अनुसार विश्वामित्र ब्राह्मण ही हैं। ब्राह्मणत्व की महिमा बढ़ाने के लिए आप ऊपर देख चुके हैं कि किस प्रकार अस्वाभाविक तथा भोलापन को लेकर शेखचिल्ली की कहानी गढ़ी गयी है। यह सब ब्राह्मणत्व का उपहास ही है।

. दान और गायों की महिमा

आगे अनेक अध्यायों में तप, दान तथा ब्राह्मण की महिमा गायी गयी है जिसमें भावुकतापूर्ण, तर्कहीन, विवकविरुद्ध तथा अस्वाभाविक कथन हैं। उनमें कुछ जो ठीक-ठाक हैं उनका दिग्दर्शन इस प्रकार है—

तपस्या (संयम) से ज्ञान, विज्ञान, आरोग्य, रूप, संपत्ति तथा सौभाग्य प्राप्त होते हैं। सबको सांत्वना देने वाला शोकों से पार हो जाता है। दुखी तथा असमर्थ की सेवा कर्तव्य है। जो मीठा और कम बोलता है, वह बहुतों को निभा सकता है। जो कभी क्रोध नहीं करता, जिसमें तृणमात्र लोभ नहीं है और जो सदैव मीठे वचन बोलता है, वह ज्ञानी पूज्य है। 'मैं धनी हूँ, बलवान हूँ और प्रभावशाली हूँ' ऐसा मानकर ज्ञानियों की उपेक्षा कभी नहीं करना चाहिए। श्रद्धा से दिया हुआ दान चित्त-शुद्धि का कारण बनता है। संत पुरुष सदैव धर्म का प्रचार तथा विस्तार करते हैं, इसलिए सदैव उनकी सेवा करना चाहिए। ज्ञानियों के पास यदि बहुत धन इकट्ठा हो जाय तो यह उनके लिए अनर्थ का कारण बनता है। अधिक धन का सहवास अहंकार और मोह में डालने वाला है। जिसके राज्य में कोई मनुष्य भूखा रह जाता हो, उस राजा को धिक्कार है। जिसके राज्य में स्त्रियों का अपहरण होता हो वह राजा नहीं, मुरदा है। भूमिदान उत्तम दान है (अध्याय -)।

अध्याय से तक भी दान तथा ब्राह्मणों की महिमा है। थका-मांदा तथा भूखा यात्री द्वार पर आवे, तो उसे जल-भोजन से तृप्त करना चाहिए। अन्नदान प्राणदान है। एकहत्तर ()वें अध्याय में आया है कि उद्दालक यज्ञ में लगे थे। उनका पुत्र नाचिकेत सेवा में था। यज्ञ समाप्त होने पर उद्दालक ने कहा—बेटा! नदी के किनारे मेरी सामग्री पड़ी है, उसे ले आओ। नाचिकेत वहां गया, परंतु कुछ नहीं पाया। लौटकर उसने बताया कि पिता जी! वहां तो कुछ नहीं दिखा। उद्दालक ने कुपित होकर कहा—अरे, तुम्हें वहां क्यों दिखायी देगा,

जाओ यमराज को देखो।' नाचिकेत आहत होकर गिर पड़ा। पिता उद्दालक भी दुखी होकर सोचने लगे 'मैंने क्या कह डाला?' नाचिकेत सावधान होकर उठा और उसने कहा-पिता जी! मैं यमराज के पास गया था। उन्होंने मुझसे गोदान का महत्त्व बताया है (अध्याय -)।

मीमांसा

लेखक ने उद्दालक तथा नाचिकेत की भोंड़ी कहानी गढ़ी है। वस्तुतः कठ उपनिषद् में कथा आयी है कि वाजश्रवा ऋषि गोदान कर रहे थे। वे गायें बूढ़ी तथा दुर्बल थीं। उनका कुमार पुत्र नचिकेता था। उसको पिता का वह दान अच्छा नहीं लग रहा था। उसका ख्याल था कि गोदान करना है तो गोशाला में जो जवान गायें हैं, बछड़ा तथा दूध देती हैं, उनका दान करना चाहिए। पिता जी अच्छी गायों को मेरे लिए ही तो रख रहे हैं, तो वे मेरा मोह त्यागकर मेरा ही दान कर दें। इसलिए कुमार नचिकेता ने कहा-पिता जी! आप मुझे किसे दे रहे हैं? यह सुनकर वाजश्रवा कुछ नहीं बोले। नचिकेता ने तीन बार अपनी बात दोहरायी, तो वाजश्रवा क्रुद्ध होकर बोले-तुम्हें यमराज को दे रहे हैं।

नचिकेता ने पिता की बात सुनकर यमराज के पास जाने के लिए प्रस्थान कर दिया। वह वहां जाकर यमराज से आत्मज्ञान का विस्तार से उपदेश पाया। इसी कहानी के माध्यम से कठ उपनिषद् का अमृतमय आत्मज्ञान का उपदेश है। यहां महाभारत में किसी पंडित ने उसे बिगाड़कर गोदान की महिमा में भ्रामक बना दिया है। नचिकेता को नाचिकेत तथा उसके पिता वाजश्रवा की जगह पर छांदोग्य उपनिषद् के ऋषि उद्दालक का नाम जड़ दिया है। और कहानी का सार गोदान की महिमा है। यह सब नचिकेता का अपमान करना है।

बहत्तर ()वें अध्याय से पुनः गोदान-महिमा चलती है। बीच में कहा गया कि सब प्रकार का मांस-त्यागी, भक्तिभावसंपन्न, धर्मपरायण, माता-पिता का भक्त, सत्यभाषी, क्रोधत्यागी, गुरुसेवी, दानी, क्षमाशील, कोमल, जितेंद्रिय, दयालु ही अविनाशी स्थिति पाने का अधिकारी होता है।

दमनशील जितेंद्रिय मनुष्य सब समय सुखी रहते हैं। दान से दम श्रेष्ठ है। दानशील क्रोध भी कर सकता है, किंतु दमनशील क्रोध नहीं करता। संसार में अनेक प्रकार के शूर-वीर होते हैं; जैसे यज्ञशूर, संयमशूर, सत्यशूर, युद्धशूर, दानशूर, बुद्धिशूर, क्षमाशूर, सांख्यशूर, योगशूर, वनवासशूर, गृहवासशूर, त्यागशूर, सरलताशूर, शमशूर, अध्ययनशूर, अध्यापनशूर, गुरुसेवाशूर, मातृ-

. दान और गायों की महिमा

पितृ-सेवाशूर, भिक्षाशूर, अतिथिसेवाशूर आदि। सत्य सबसे बड़ा है। सत्य से सूर्य तपता है, सत्य से अग्नि प्रज्वलित होती है, सत्य से वायु बहता है। सत्य पर सब कुछ टिका है। सत्य से ही सबको प्रसन्नता मिलती है। अतएव सत्य का कभी उल्लंघन न करे। जिसने अपने मन पर संयम कर उसे विनयशील बना लिया है, वह धन्य हो गया। जो जीवनपर्यंत ब्रह्मचर्य से रहता है, वह धन्य है।

बहत्तर से तिरासी (-)वें अध्याय में गौ तथा गौदान की महिमा गायी गयी है। बयासी ()वें अध्याय में लक्ष्मी और गायों का रोचक संवाद है, वह इस प्रकार है—लक्ष्मी गायों के झुंड में आ गयीं। लक्ष्मी बड़ी सुंदरी। गायों ने परिचय पूछा। लक्ष्मी ने अपना परिचय दिया और कहा कि सबके अर्थ, धर्म और काम मुझसे ही संपन्न होते हैं। मैं जहां रहती हूं, वहीं चकाचक रहता है। जहां मैं नहीं रहती, वहां सूनसान रहता है। लक्ष्मी ने आगे कहा—गौओ! मैं तुम सबमें अपना निवास चाहती हूं। मुझे पाकर तुम भी संपन्न हो जाओगी।

गायों ने कहा—देवि! तुम चंचल हो। तुम कहीं भी स्थिर होकर नहीं रहती। इसके अलावा तुम्हारा बहुतों के साथ संबंध है। इसलिए हम तुम्हें नहीं चाहतीं। तुम्हें जहां जाना हो, जाओ। हमारे शरीर हृष्ट-पुष्ट हैं। हमें तुमसे क्या लेना-देना? तुमने हमें दर्शन दिया, इसके लिए तुम्हें धन्यवाद है।

लक्ष्मी ने कहा—सारा जगत मेरा आदर करता है, मेरी बाट जोहता है कि मेरे घर में लक्ष्मी आवें। मैं तुम लोगों में रहना चाहती हूं। लोक की यह कहावत ठीक ही जान पड़ती है 'बिना बुलाये जाने पर अनादर होता है।' परंतु मैं अपमानित होने योग्य नहीं हूं।

गौवों ने कहा—देवि! हम तुम्हारा अपमान नहीं कर रही हैं, तुमसे केवल बचना चाहती हैं। तुम्हारा चित्त चंचल है। तुम कहीं स्थिर होकर नहीं रहती हो। इस विषय में बहुत बात करने से क्या प्रयोजन! तुम जहां चाहो वहां चली जाओ।

लक्ष्मी ने कहा—गायो! तुम सब यदि मेरी अवहेलना करती हो; तो मानो मैं सारे संसार से तिरस्कृत हो गयी। मैं तुम्हारी शरण में हूं, तुम्हारी भक्त हूं। तुम मुझे अपना लो। मैं तुम्हारे नीचे-से-नीचे स्थान में रहना चाहती हूं। तुम मुझे अपना लो।

गौओं ने आपस में राय-मशविरा करके लक्ष्मी से कहा—अच्छा, तुम हमारे गोबर और मूत्र में निवास करो।

लक्ष्मी प्रसन्न हो गयीं और वह गायों के गोबर-मूत्र में जा बैठीं (अध्याय -)।

महाभारत मीमांसा : तेरहवां-अनुशासन पर्व

मीमांसा

आप समझ सकते हैं कि लक्ष्मी कोई व्यक्ति नहीं, अपितु जड़ धन-दौलत है और गाय चेतन प्राणी होकर भी मूक पशु है। लक्ष्मी से भी अधिक गायों की महिमा है, यह बताने के लिए यह कल्पित कहानी गढ़ी गयी है। गाय के गोबर-मूत्र में लक्ष्मी निवास करती है, यह बात सच है। गाय के गोबर-मूत्र खेत में पड़ने पर खेत की उपजाऊ-शक्ति बढ़ती है, अन्न पैदा होता है और अन्न ही मुख्य धन है जिससे प्राणी जीवन धारण करते हैं।

. स्वर्ण-दान और स्वर्ण-उत्पत्ति की कल्पना

युधिष्ठिर ने कहा-पितामह! राज्य सदैव दुखरूप है। जो अपने मन को वश में नहीं रख पाता है, वह राज्य नहीं चला सकता। इसलिए राजाओं की प्रायः शुभगति नहीं होती। उनमें से वे ही पवित्र होते हैं जो नियमपूर्वक पृथ्वी का दान करते हैं; परंतु पितामह! स्वर्ण-दान की बड़ी महिमा सुनता हूं। इसका महत्त्व बतावें। स्वर्ण क्या है, इसकी उत्पत्ति कैसे हुई, इसका उपादान क्या है, इसके दान का महत्त्व क्या है?

भीष्म ने कहा-जब पिता शांतनु का निधन हुआ, तब मैं उनका पिंडदान करने के लिए गंगाद्वार (हरद्वार) गया। वहां महर्षियों को बैठाकर जलदान किया। जब पिंडदान करने लगा, तब बिछाये हुए कुश-घास को भेदकर जमीन से हाथ निकला। परंतु मैंने पिंड कुश-घास पर ही रखा। रात में पिताजी ने सपने में मेरी प्रशंसा की कि तुमने शास्त्र-विधान के अनुसार पिंड कुश पर रखा, यह ठीक हुआ। पितर साक्षात् प्रकट होकर पिंड लेते भी नहीं। मेरे पितरों ने मुझसे कहा-तुम स्वर्ण-दान करो। स्वर्ण-दान से पहले और पीछे की दस-दस पीढ़ियों का उद्धार होता है। इतने में मेरी नींद खुल गयी।

परशुराम ने इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार किया था। इस पाप से मुक्त होने के लिए उन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया, किंतु न उनका पाप कटा और न उन्हें शांति मिली। तब ऋषियों ने उन्हें स्वर्ण-दान करने की राय दी।

इसके बाद वसिष्ठ ने स्वर्ण उत्पन्न होने की कथा कही। महादेव जी का पार्वती से विवाह हुआ था। वे दोनों कैलास पर्वत पर विराजमान थे। सब देवता मिलकर उनके पास गये और उन्होंने शिव तथा पार्वती से कहा कि आप लोग कोई संतान पैदा न करें, क्योंकि आप लोगों का तेज महान है। जो आपके तेज

. स्वर्ण-दान और स्वर्ण-उत्पत्ति की कल्पना

से पैदा होगा, उसे धरती नहीं सह पायेगी। उसके तेज से संसार भस्म हो जायगा।

महादेव भोलेनाथ हैं। उन्होंने देवताओं की बात मान ली और उन्हें स्वीकृति दे दी; किंतु पार्वती गुस्से में आ गयीं। उन्हें अपना वंध्या होना कष्टकर लगा। अतएव उन्होंने देवताओं को शाप दिया कि तुम सब देवताओं का निर्वंश हो जायगा। “तस्मात् सर्वे सुरा यूयम् अनपत्या भविष्यथ-इसलिए तुम सभी देवता निर्वंश हो जाओगे (,)।”

वहां अग्निदेव नहीं थे, इससे यह शाप उनपर लागू नहीं हुआ। महादेव ने अपने वीर्य को सम्हाल रखा था, परंतु उसमें से थोड़ा वहां गिर पड़ा। वह अग्नि में पड़कर बढ़ने तथा ऊपर उठने लगा फिर वह एक स्वयंभू पुरुष रूप में हो गया।

इसी समय तारक नाम का असुर पैदा हुआ, जो बलवान था। उसने देवताओं के नगर, स्थान, विमान सब कुछ छीन लिया। सभी देवता पीड़ित हो गये। सब देवता मिलकर ब्रह्माजी के द्वार पर गोहार मचाये। ब्रह्मा जी ने कहा- मेरे लिए सब समान हैं, परंतु मैं अधर्म नहीं पसंद करता, अतएव तुम लोग तारक को मार डालो।

देवताओं ने कहा-हमारे में इतना बल नहीं है कि तारकासुर को मार पायें। ब्रह्माजी ने कहा-अग्निदेव उसे मारने के लिए पुत्र पैदा करेंगे। जब महादेव का वीर्य गिरा था, तब उसे अग्नि ने ले रखा था और वे उसे गंगा में रख दिये थे। वह बालक रूप में होकर उत्पन्न होगा। वही तारकासुर को मारेगा। तुम अग्नि की खोज करो।

सब देवता अग्नि को खोजने लगे, परंतु उनका कहीं पता न लगा। इतने में अग्नि के ताप से पीड़ित होकर एक मेढक रसातल से ऊपर आया। उसने देवताओं को बता दिया कि अग्नि पाताल में हैं। मेढक इतना कहकर पानी में घुस गया, परंतु अग्निदेव ताड़ गये कि मेढक ने मेरी चुगुली खायी है। अतएव अग्निदेव ने मेढक की पूरी जाति को शाप दिया कि तुम्हें रस का ज्ञान नहीं होगा। अग्निदेव पाताल से भाग खड़े हुए और अन्यत्र छिप गये। किंतु मेढक ने देवताओं का काम बनाया था, इसलिए उन्होंने मेढक से कहा-तुम्हारे जीभ नहीं होगी, परंतु तुम बड़े जोर से टर्-टर् बोल सकोगे।

देवता पुनः अग्निदेव को खोजने लगे। इतने में उन्हें एक हाथी मिल गया। उसने बताया कि अग्निदेव पीपल के पेड़ पर हैं। अग्निदेव ने जब हाथी की यह चुगुलखोरी जानी, तब उन्होंने पूरी हाथी जाति को शाप दे दिया कि तुम्हारी जीभ

उलटी हो जायगी। अग्निदेव हाथी जाति को शाप देकर पीपल-पेड़ से उतरकर 'शमी' के पेड़ पर चढ़कर छिप गये।

देवताओं ने हाथी से कहा-तुम घबराओ मत, तुम सब अपना खाना खा सकोगे और उच्च स्वर में चिन्घार सकोगे। इधर एक तोते ने देवताओं को बता दिया कि अग्निदेव 'शमी' के पेड़ पर छिपकर बैठे हैं। अग्नि को तोते की चुगुलखोरी बुरी लगी और उन्होंने तोते की पूरी जाति को शाप दे दिया कि तू वाणी से रहित हो जायगा। देवताओं ने तोते को भी सांत्वना दी कि तुम्हारी जीभ उलट जाने पर भी तुम बोल सकोगे और तुम्हारी बोली मीठी रहेगी। इसके बाद देवताओं ने दौड़कर शमी के पेड़ पर अग्निदेव का दर्शन किया, और तब से शमी वृक्ष को अग्नि का मुख्य स्थान नियत किया गया। अग्निदेव जो रसातल में रहे थे, उसी से उसका पानी झरनों से निकलते समय उसमें से गरमी निकलती है।

अग्निदेव ने व्यथित होकर देवताओं से पूछा-आप लोग किस उद्देश्य से मेरे पीछे पड़े हैं? देवताओं तथा ऋषियों ने कहा-एक तारक नाम का असुर है, जो ब्रह्मा जी के वरदान से उन्मत्त हो गया है और देवों तथा ऋषियों को सता रहा है। अतएव तुम उसका वध कर दो।

अग्निदेव ने देवताओं का उपर्युक्त प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और वे गंगातट पर गये। वे गंगा जी से मिले। महादेव जी का गिरा हुआ वीर्य गंगा जी ने गर्भ रूप में धारण किया। वह तेजस्वी गर्भ बढ़ने लगा। गर्भ के तेज से गंगा जी पीड़ित हो गयीं और उसे सहन करने में असमर्थ हो गयीं। महादेव जी का तेज (वीर्य) जब से अग्निदेव ने गंगा जी में स्थापित किया वह निरंतर बढ़ रहा था। इसी बीच किसी असुर ने वहां आकर बड़े जोर से गर्जना की। उसकी भयंकर आवाज से गंगा जी भयभीत हो गयीं और उनकी आंखें घूमने लगीं और उनकी आंखों से आंसू तड़ातड़ बहने लगे। वे अचेत हो गयीं, इसलिए वे उस गर्भ को न सम्हाल सकीं। उन्होंने व्याकुल होकर अग्निदेव से कहा-भगवन! मैं आपके इस तेज को नहीं सह सकती। मेरा स्वास्थ्य खराब हो गया है। मेरी चेतना लुप्त हो रही है। अब मैं इसे नहीं धारणकर पाऊंगी, चाहे पाप हो या पुण्य।

अग्निदेव ने कहा-देवि! यह गर्भ मेरे तेज से संपन्न है। इसका फल महान होगा। इसे धारण करो। देवताओं के मना करने पर भी गंगा ने उस गर्भ को मेरु पर्वत पर छोड़ दिया। अग्नि ने गंगा से पूछा कि देवि! तुमने गर्भ का जब सुमेरु पर्वत पर त्याग किया, तब वह कैसा लगा?

. श्राद्ध कर्म

गंगा ने कहा—वह गर्भ क्या, सोना है। वह बालक अपने तेज से जगत को प्रकाशित करते हुए पर्वतों, नदियों और झरनों की ओर दौड़ने लगा। अग्निदेव! तुम्हारा पुत्र सूर्य के समान तेजवान है। इतना कहकर गंगा जी अंतर्धान हो गयीं। अग्निदेव भी वहां से चलते बने। अग्नि से उत्पन्न स्वर्ण वसु (धन) है। इसलिए उस समय से पृथ्वी वसुमती एवं वसुंधरा कहलाने लगी।

उस अग्नि के सुंदर बालक को कृतिकाओं ने देखा और वे उसे अपना पुत्र मानकर दूध पिलाने लगीं। कृतिकाओं के दूध पिलाने से उस बच्चे का नाम 'कार्तिकेय' पड़ा, शिव के स्खलित वीर्य से उत्पन्न होने के कारण 'स्कंद' नाम पड़ा और पर्वत की गुहा में निवास करने से वह 'गुह' कहलाया। इस प्रकार अग्निदेव से संतान रूप में स्वर्ण की उत्पत्ति हुई। यह अत्यंत पवित्र, मंगलमय है। जो सुवर्ण है वही भगवान अग्नि है, वही ईश्वर और प्रजापति है।

इस प्रकार स्वर्ण का महत्त्व है। इसका दान परम कल्याण करने वाला है। स्वर्ण का दाता परम गति प्राप्त करता है।

अंततः कार्तिकेय देवताओं के सेनापति पद पर प्रतिष्ठित किये गये और उन्होंने तारकासुर को मार गिराया (अध्याय -)।

मीमांसा

सोना का दान ब्राह्मणों को देने से सर्वोच्च फल होता है, यह बात सिद्ध करने के लिए ऊपर कहानी गढ़ी गयी है जो पूरी-की-पूरी अस्वाभाविक, तर्कहीन तथा कल्पित है। ऐसी-ऐसी झूठी कहानी गढ़कर ब्राह्मण-पंडितों ने वसिष्ठ आदि ऋषियों, भीष्म, युधिष्ठिर आदि राजपुरुषों को बकवासी बनाया है। सोना कैसे उत्पन्न होता है, इसका ज्ञान सहज है। *“सबकी उत्पत्ति धरती, सब जीवन प्रतिपाल।”* धरती से सोना पैदा होता है। वह किसी का वीर्य नहीं है। दान की महिमा में ब्राह्मण-पुरोहितों ने पुराणों और महाभारत को प्रदूषित किया है।

. श्राद्ध कर्म

आगे श्राद्ध का महत्त्व बताया गया है। अमुक तिथि को श्राद्ध करने से अमुक फल मिलता है; जैसे प्रतिपदा को श्राद्ध करने से मनचाही बहुत संतान पैदा होती है। द्वितीया को श्राद्ध करने से कन्या की प्राप्ति, तृतीया को श्राद्ध करने से घोड़ों की प्राप्ति, चतुर्थी को श्राद्ध करने से छोटे पशुओं की वृद्धि,

पंचमी को श्राद्ध करने से पुत्र की प्राप्ति होती है इत्यादि। यह सब सतासी ()वें अध्याय का विषय है। यही विषय अगले छोटे अध्याय में है। इसके बाद नवासी ()वें अध्याय में विभिन्न नक्षत्रों में श्राद्ध करने का महत्त्व बताया गया है।

नब्बे ()वें अध्याय में श्राद्ध में निमंत्रित करने के लिए ब्राह्मणों की परख करने की बात बतायी है। पहले उन ब्राह्मणों को लें जो अपात्र हैं; जैसे-जुआरी, गर्भ हत्यारा, राजयक्ष्मा का रोगी, पशुपालक, वैद्य (डॉक्टर), अपढ़, गांव का हरकारा, सूदखोर, गवैया, सब तरह की चीज बेचने वाला, दूसरों का घर फूंकने वाला, विष देने वाला, सोमरस बेचने वाला, हस्तरेखा से जीविका चलाने वाला, राजा का नौकर, तेल बेचने वाला, झूठी गवाही देने वाला, पिता से झगड़ा करने वाला, जिसके घर में जार पुरुष आता हो वह, कलंकित, चोर, शिल्पजीवी, बहुरुपिया, चुगुलखोर, मित्रदोही, परस्त्री लंपट, व्रतरहित मनुष्यों का अध्यापक, हथियार बनाकर जीविका चलाने वाला, कुत्ते साथ लेकर घूमने वाला, जिसके छोटे भाई का विवाह हो गया हो ऐसा अविवाहित बड़ा भाई, चर्म रोगी, गुरुपत्नीगामी, नाटकी, देवमंदिर में पूजा करके जीविका चलाने वाला देवलक, राजाओं की प्रशंसा में गीत गाकर जीविका चलाने वाला कुशीलव, नक्षत्रों का फल बताकर जीविका चलाने वाला, ये सब ब्राह्मण पंक्ति से बाहर रखने योग्य हैं।

श्राद्ध में मित्रों को निमंत्रित करना गलत है। श्राद्ध में उसे निमंत्रित करना चाहिए जो न मित्र हो और न शत्रु हो।

“भारत! दस लाख अपात्र ब्राह्मणों को भोजन कराने की अपेक्षा सदा संतुष्ट रहने वाले एक वेदज्ञ ब्राह्मण को भोजन कराना उत्तम है।” यथा-

यः सहस्रं सहस्राणां भोजयेदनुतान् नरः।

एकस्तान्मन्त्रवित् प्रीतः सर्वानर्हति भारत

(अनुशासन पर्व, ,)

एकान्नबे ()वें अध्याय में भी श्राद्ध का विषय है। बानबे ()वें अध्याय में आया है कि पितर और देवताओं को श्राद्ध में नाना प्रकार व्यंजन खाते-खाते अजीर्ण हो गया। वे लोग घबराये और ब्रह्मा जी के दरवाजे पर जाकर गोहार लगाये। ब्रह्मा जी ने कहा कि यह मेरे वश की बात नहीं है कि मैं तुम लोगों के पेट का अन्न पचा दूँ। देखो, मेरे पास अग्निदेव बैठे हैं। ये तुम्हारे कल्याण की बात बतायेंगे।

. त्याग का महत्त्व और बुराइयों से बचने का निर्देश

अग्निदेव ने देवताओं और पितरों से कहा—श्राद्ध में हमलोग एक साथ भोजन किया करेंगे। मेरे साथ जब आप लोग खायेंगे तब भोजन पचा करेगा (अध्याय -)।

मीमांसा

श्राद्ध का अर्थ है श्रद्धायुक्त, श्रद्धावान। श्राद्धकर्म का अर्थ है पिता के मर जाने पर उनके नाम से ब्राह्मण को भोजन कराना, उन्हें दान देना और उनके नाम पर हर वर्ष यह सब करना। यह ब्राह्मण-पंडितों का बनाया लोकाचार है। वस्तुतः पिता के मर जाने पर पुत्र उनका सब धन अपने भोग में न लगा ले, अपितु उसमें से कुछ हिस्सा पिता के नाम पर ऐसी जगह लगाये जिससे पवित्रात्माओं की, असमर्थों की और साधारण जनता की सेवा हो।

अपच का कारण है गरिष्ठ तथा अधिक भोजन करना। इसे ब्रह्मा, ईश्वर कोई नहीं पचा पायेगा। अग्नि ने कहा कि अब से मेरे साथ बैठकर भोजन किया करो, तो पचा करेगा। अग्नि तो जड़ है। वह क्या कहेगी? वस्तुतः अपने पेट की अग्नि-पाचनशक्ति देखकर भोजन करने से वह पचता रहेगा।

. त्याग का महत्त्व और बुराइयों से बचने का निर्देश

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह! साधारण लोग उपवास को तप कहते हैं। क्या उपवास ही तप है या कुछ और तप है?

भीष्म ने कहा—राजन! जो लोग पंद्रह दिन या एक महीना का उपवास ठानते रहते हैं, वे व्यर्थ ही अपने शरीर को दुर्बल बनाते हैं। वस्तुतः त्याग ही तप है। ब्रह्मचर्य, वाक्यसंयम, मन का संयम आदि का पालन करना ही तप है।

गृहस्थ केवल धर्म पालन के लिए परिवार की सेवा करे, विषय-विलास के लिए नहीं। वह सदैव सावधान रहे, मांस-नशा कभी न ग्रहण करे, सदैव सद्ग्रंथ पढ़े, सत्य-भाषण तथा इंद्रिय-संयम रखे। वह सदैव अमृताशी, विघसाशी तथा अतिथिप्रिय हो।

जो केवल प्रातः और सायंकाल भोजन करता है, इसके बीच में कुछ नहीं खाता है, वह मानो सदा उपवास करता है। जो केवल पत्नी में गर्भाधान के लिए उसकी संगति करता है, वह गृहस्थ ब्रह्मचारी है। जो परिवार, अतिथि तथा नौकरों के भोजन कर लेने के बाद भोजन करता है, वह अमृत भोजन करने वाला अमृताशी है और वही विघसाशी है।

साधु, पुरोहित कोई भी हो वह गलत आचरण में रहने वालों से दान न ले। यदि ऐसा दान लिया जायगा तो दान लेने वाला पाप में डूबेगा। इस विषय में राजा वृषादर्भि और सप्त ऋषियों का संवाद रूप पुराना इतिहास का उदाहरण दिया जाता है, वह इस प्रकार है-

एक समय की बात है कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, भरद्वाज, गौतम, विश्वामित्र, जमदग्नि, वसिष्ठ की पत्नी अरुंधती, इन सबकी सेविका गंडा और उसका पति पशुसख, ये सब समाधि के द्वारा सनातन ब्राह्मी स्थिति प्राप्त करने के लिए पृथ्वी पर भ्रमण कर रहे थे। कुछ दिन में अवर्षण के कारण जोर से भुखमरी पड़ी। उपर्युक्त सभी ऋषियों को राजा वृषादर्भि ने दान में बहुत कुछ देना चाहा।

ऋषि ने कहा-राजा का दिया हुआ दान ऊपर से मीठा-मधु लगता है, परंतु परिणाम में वह भयंकर विष है। राजन! आप हमें प्रलोभन में मत डालिए। राजन! आप दान उनको दें जो लेना चाहते हों। राजा ने मंत्रियों को प्रेरणा दी। मंत्री वन में गूलर के फल में स्वर्ण मुद्राएं भरकर ऋषियों को फल अर्पित करने के बहाने उन्हें देना चाहे। वे सभी फल वजनदार हो गये थे। ऋषियों ने समझ लिया कि फल के बहाने राजा स्वर्ण मुद्राएं देना चाहते हैं। अतएव उन्होंने कहा-ये गूलर हमें लेने योग्य नहीं हैं। हमारी बुद्धि क्षीण नहीं है, हमारी ज्ञानशक्ति सुप्त नहीं है, हम सो नहीं गये हैं। जो लोक-परलोक में शांति चाहे उसके लिए यह लेना उचित नहीं है।

ऋषियों ने और कहा-संसार के सारे धन, जौ, सुवर्ण, पशु, स्त्रियां यदि एक ही पुरुष को मिल जायं तो भी उसे संतोष नहीं होगा। तृष्णा तो बढ़ने वाली है। उसकी कोई सीमा नहीं। संसार में ऐसा कोई पदार्थ नहीं है, जिससे मनुष्य की आशा का पेट भर सके। मनुष्य की आशा समुद्र के समान न भरने वाली है। एक इच्छा पूरी होने पर अन्य इच्छाएं खड़ी हो जाती हैं। भोगों की कामनाएं भोग वस्तुओं से उसी प्रकार नहीं शांत होतीं, जिस प्रकार घी डालने से आग शांत नहीं होती, अपितु बढ़ती है। लौकिक धन का लोभ करने से तप नष्ट हो जाता है। अरुंधती ने कहा कि संसार में एक पक्ष की राय है कि धर्म के लिए धन लेना चाहिए, परंतु मेरा विचार है कि धन-संग्रह करने की अपेक्षा तपस्या-साधना करना उत्तम है। महर्षिगण राजा की स्वर्णमुद्राओं को न लेकर वहां से अन्यत्र चल दिये।

ऋषि लोग वन में फल-मूल खाते हुए विचर रहे थे। इतने में एक संन्यासी मिला, जो स्वस्थ और प्रसन्न मुद्रा में था। अरुंधती ने ऋषियों से कहा-क्या आप लोग इस संन्यासी की तरह स्वस्थ और प्रसन्न हो सकते हैं?

. त्याग का महत्त्व और बुराइयों से बचने का निर्देश

ऋषियों ने कहा—हम लोगों की तरह इस संन्यासी को चिंता नहीं है कि आज हमारा अग्निहोत्र नहीं हुआ है। इसे भोजन-संग्रह करने की चिंता नहीं, वेदपाठ भूलने की चिंता नहीं है। इसे वर्ष भर के लिए भोजन-सामग्री और ईंधन जुटाने की चिंता नहीं है। हमें परिवार की व्यवस्था करना पड़ता है, इस संन्यासी को इसकी चिंता नहीं है। हम लोगों को कुटुंब के भरण-पोषण की चिंता करनी पड़ती है, इस संन्यासी को यह सब झंझट नहीं है। इस संन्यासी को पत्नी के कलंकित होने की चिंता नहीं है। हम लोगों की तरह इस संन्यासी को तीन लड़की रस्सी की मेखला तथा मृगचर्म नहीं धारण करना पड़ता।

सब भूखे थे। आगे एक सरोवर मिला। उसमें कमल खिले हुए थे। सब लोग कमल के फूल तथा उसके कंद खाने की बात सोचने लगे। वहां रक्षा करने वाली एक राक्षसी थी। ऋषियों ने उससे कहा—तू कौन है? क्यों यहां अकेली खड़ी है? उसने कहा—मैं कोई होऊँ, तुम्हें यह पूछने का अधिकार नहीं है। तुम इतना ही समझो कि मैं इसकी रक्षा करती हूँ।

एक ऋषि ने कहा—भद्रे! हम लोग भूखे हैं। यदि तुम आज्ञा दे दो तो हम इस सरोवर से कुछ कमल-फूल तथा उसके कंद ले लें।

राक्षसी ने कहा—एक शर्त है। तुम लोग एक-एक करके मेरे सामने आओ और अपने नाम तथा उसका तात्पर्य बताकर सरोवर से कमल तथा उसके कंद ले लो।

अत्रि ने कहा—मेरा नाम अत्रि है। आत्मा का अज्ञान रात्रि है। मैं उससे रहित आत्मज्ञानी हूँ, इसलिए मैं अ-रात्रि होने से अत्रि नाम वाला हूँ।

राक्षसी ने कहा—महर्षे! आपने अपने नाम की जो परिभाषा की है उसे मुझे समझना कठिन है। जाइए, कमल ले लीजिए।

वसिष्ठ ने कहा—मेरा नाम वसिष्ठ है। मुझे लोग वरिष्ठ कहते हैं, इसलिए वसिष्ठ कहलाता हूँ। मैं गृहस्थ हूँ। गृह में वास करता हूँ, इसलिए लोग मुझे वसिष्ठ कहते हैं। घर-गृहस्थी के ऐश्वर्य से संपन्न होने से भी लोग मुझे विशिष्ठ मानते हैं, इसलिए मैं वसिष्ठ कहलाता हूँ।

राक्षसी ने कहा—आपके नाम के अर्थ के अक्षर भी मुझसे उच्चारण होना कठिन है। मैं आपका नाम भी याद नहीं रख सकती। जाओ, कमल ले लो।

इसी प्रकार सबने अपने नाम की परिभाषा की और सबके उत्तर में राक्षसी ने इन नामों के अर्थ समझने में अपनी असमर्थता बतायी और सबको आज्ञा दी कि कमल-फूल तथा उसका कंद ले लें। सबने कमल-फूल तथा उसके कंद

महाभारत मीमांसा : तेरहवां-अनुशासन पर्व

तोड़े तथा खोदकर उखाड़े और सरोवर के तट पर उसको रखकर सरोवर में नहाने लगे। वे जब बाहर निकले, तो कमल-फूल तथा उसके कंद नहीं दिखे। अतएव उनमें एक दूसरे के प्रति संदेह पैदा हुआ कि किसने उसे छिपाया। फिर वे सब निर्णय लिए कि हम सब मिलकर शपथ लेकर अपनी शुद्धता सिद्ध करें। सब बारी-बारी कहने लगे कि यदि हमने चोरी की है तो हमें अमुक अपराध लगे। उनमें कुछ इस प्रकार हैं-संन्यासी होकर त्याग से न रहने, शरणागत को मारने, कन्या बेचकर जीविका चलाने, विवाद करने, धरोहर हड़प लेने, झूठी गवाही देने, गुरु का अपमान करने, सबसे वैर करने, माता-पिता का अनादर करने, सास का तिरस्कार करने, पति से कटु बोलने, झूठ बोलने, भाई-बंधुओं से विरोध करने आदि का पाप हमें लगे यदि हमने कमल चुराया हो।

इसी से मिलती-जुलती कमलों की चोरी की कथा अगले चौरानबे ()वें अध्याय में है और उसमें भी शपथ खाने की कहानी है (अध्याय -)।

मीमांसा

इस बच्चों की कहानी में त्याग का महत्त्व तथा शपथ के बहाने गलत बातों के निषेध से शिक्षा लेना चाहिए। किंतु वसिष्ठ, विश्वामित्र, अत्रि आदि ऋषियों को आपस में कमल-फूल और उसके कंद की चोरी का अपराध लगाना और उसके लिए शपथ खाना अत्यंत भद्दी बातें हैं। जिस भी पंडित ने यह सब लिखा है, उसकी कल्पना शिथिल और अस्वाभाविक है।

इस कहानी के आरंभ में गलत आचरण वालों से दान लेने का निषेध दिखाया गया है, वह महत्त्वपूर्ण है। आज-कल राज-मंत्रियों के पीछे घूमने वाले साधु-संन्यासियों को उक्त कहानी से प्रेरणा लेकर मंत्रियों का पीछा छोड़कर भजन में लगना चाहिए।

. छाता, जूते की उत्पत्ति, उनके दान तथा संन्यास-धर्म का वर्णन

युधिष्ठिर ने पूछा-पितामह! श्राद्ध कर्म में छत्र (छातों) तथा उपानह (जूते) का जो दान किया जाता है, यह कब से शुरू हुआ तथा इनकी उत्पत्ति कैसे हुई?

भीष्म ने कहा-राजन! एक बार महर्षि जमदग्नि बाण चलाने का अभ्यास कर रहे थे। उन फेंके हुए बाणों को उनकी पत्नी रेणुका ला-लाकर उनको दिया

. छाता, जूते की उत्पत्ति, उनके दान तथा संन्यास-धर्म का वर्णन

करती थीं। एक बार एक बाण बड़ी दूर चला गया। धूप का समय था। ऊपर से सूरज का ताप और जमीन से धूल का ताप, दोनों रेणुका के सिर और पैरों को पीड़ित कर दिये। जब जमदग्नि को पता लगा कि सूरज के ताप के नाते रेणुका को यह दुख हुआ है, तब वे उस पर कुपित हो गये और सोचे कि मैं अपने बाणों से सूरज को छेदकर गिरा दूंगा। वे धन्वा-बाण लेकर सूरज के सामने खड़े हो गये।

सूरज घबरा गया। वह ब्राह्मण के वेष में जमदग्नि के पास आकर उसे कहने लगा कि सूरज ने आपका क्या अपराध किया है? सूरज आकाश में रहकर अपनी किरणों से समुद्र के जल को खींचकर आकाश में ले जाता है और उसे पुनः पृथ्वी पर बरसाता है जिससे अन्न, फल-मूल, वनस्पति आदि पैदा होते हैं जिससे प्राणियों का पालन होता है। यह आप भी जानते हैं। मैं आपकी प्रार्थना करता हूँ कि आप कृपया सूरज को नष्ट न करें।

जमदग्नि जान गये कि यह ब्राह्मण वेष में सूरज है। उन्होंने कहा-मैं तुम पर कुपित हूँ। तुम्हें बाणों से छेदकर ध्वस्त कर दूंगा।

सूरज ने कहा-आप मुझे नष्ट कर सकते हैं। भगवन! मैं आपका अपराधी हूँ। फिर भी मैं आपकी शरण हूँ।

जमदग्नि सूरज की विनम्रता से हंस पड़े और उन्होंने कहा कि जो शरणागत की रक्षा नहीं करता है, वह अपराधी है। परंतु ध्यान दो। तुमसे जो अपराध हुआ है, उसको दूर करने का उपाय करो।

इसके बाद सूर्य ने चट दे छाता और जूते जमदग्नि को देकर उनसे कहा-छाता से मेरी किरणों से सिर की रक्षा होगी और चाम के जूते पहन लेने से पैर गरम धूल से नहीं जलेंगे। आप इन्हें ग्रहण कीजिए। आज से इन दोनों का जगत में प्रचार होगा और पुण्य के सभी अवसरों पर छाता-जूते का दान उच्च और अक्षय फल देने वाला होगा।

भीष्म ने कहा-युधिष्ठिर छाता लगाने तथा जूते पहनने की प्रथा सूर्य ने ही जारी की है। इनका दान तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। जो मनुष्य सौ तीलियों का सुंदर छाता का दान करता है, वह परलोक में सुख पाता है, इंद्र लोक में अप्सराओं का सुख पाता है। जो स्नातक द्विज को जूते का दान करता है, वह स्वर्ग में निवास पाता है (अध्याय -)।

मीमांसा

आपने बच्चों की कहानी पढ़ी। सूरज पृथ्वी से तेरह लाख गुणा बड़ा दहकता आग का जड़ पिंड है। वह जमदग्नि की शरण में आने के लिए ब्राह्मण

बन गया और उसने उनकी बड़ी बिनती-मादरौ की और जूते-छाते भी दिये। उसके पहले किसी के पैर-सिर धूप में नहीं जलते होंगे! यह सारी बाल-कहानी ब्राह्मणों को दान में छाते-जूते देने के लिए गढ़ी गयी है। इससे ऐसे ब्राह्मणों ने अपनी इज्जत घटायी है। सौ तीली का छाता होने की कल्पना हृद् अतिशयोक्ति है।

इस छानबे ()वें अध्याय में कुल बाइस () श्लोक हैं जिनका विवरण ऊपर दिया गया है। इसके आगे इसी अध्याय में करीब पौने दो सौ श्लोक हैं जो प्रक्षेप हैं। इसीलिए गीताप्रेस वालों ने उनकी क्रम संख्या नहीं दी है, किंतु उसमें काम की चीजें हैं। उनका विवरण आगे देखें-

पराशर कहते हैं-संन्यासी भिक्षु जितेंद्रिय, मनोनिग्रही, पवित्र, स्थिर, सबल, धैर्यवान, उत्तरोत्तर वाद-विवाद रहित, निर्लोभी, दयालु, सरल, आत्मलीन, सदाचारपरायण तथा सब प्राणियों की हितकामना रखने वाला हो; और काम, क्रोध, लोभ, मान, मोह तथा मद को जीतने वाला हो और धैर्य का आश्रय लेकर गुरुजनों की सेवा में तत्पर, अहंकार-शून्य, कर्म-मन-वाणी और नेत्र पर संयम रखकर शांत चित्त हो जीवन व्यतीत करे; समझदारी से काम ले, सच्चे ज्ञानियों की शरण ले और संतुलित भोजन लेकर साधना में लगा रहे।

आगे शौचाचार का निर्देश किया गया है। मूत्रत्याग के बाद जल से मूत्रेंद्रिय को धोना चाहिए और हाथ को भी तथा पैर को धोये या जल का हाथ से स्पर्शकर पैर पोंछ ले। टट्टी होने के बाद जल से साफ धो ले, फिर तीन बार गुदाद्वार में मिट्टी लगाकर जल से धोवे। उसके बाद बायें अशुद्ध हाथ का कहीं देह या वस्त्र में स्पर्श न करे। फिर मिट्टी-जल से केवल बायें हाथ को तीन बार धोवे, पश्चात दोनों हाथों को मिट्टी-जल से तीन बार धोये।

जीव के अपने कर्म ही उसे सुख-दुख देते हैं। जो अपना कर्तव्यकर्म है उसको बोझा मानकर न करे, अपितु प्रसन्न-मन होकर उत्साह से करे, तभी उसका उत्तम फल मिलता है तथा दूसरों की नजरों में प्रतिष्ठा होती है।

इस प्रसंग में बताया गया है कि कर्मकर मनुष्य संन्यासियों के आश्रम तथा निवास पर जाकर उनकी सेवा करे, जल भरकर रखे, उनके वस्त्र साफ करे तथा जो उनकी आवश्यकता हो उसके अनुसार सेवा करे, सदा प्रिय वचन बोले।

जगत के सारे द्वंद्व स्वभाव से आते-जाते हैं जैसे ठंडी, गरमी, वर्षा, अनुकूलता-प्रतिकूलता आदि सारी चीजें प्रकृति के स्वभाव से पैदा होती हैं और विलीन होती हैं। समस्त त्रिगुणात्मक पदार्थ समुद्र की लहर के समान उत्पन्न-

. छाता, जूते की उत्पत्ति, उनके दान तथा संन्यास-धर्म का वर्णन

लीन होते रहते हैं। तत्त्व का ज्ञाता ऐसा जानकर न कहीं पाप-कर्म में फंसता है और न उद्वेगित होता है।

संन्यासी को चाहिए कि वह किसी वस्तु की कामना न करे। जो सहज मिल जाय, उसी से संतोषपूर्वक जीवन-निर्वाह करे। क्रोधी और ज्ञानमार्ग के द्रोही से तो कोई प्रयोजन न रखे। जैसे अपने ऊपर हित की भावना रहती है, वैसे प्राणी मात्र के प्रति हित की भावना रखे। संन्यासी सर्वत्र अनासक्त रहे। मान-अपमान में समान भाव से बरते। सोना-मिट्टी को बराबर समझे। सभी प्राणियों को निर्भयता दे। द्वंद्वरहित रहे। सांसारिकता और परिग्रह से दूर रहे। किसी वस्तु की कामना न रखे। अपने शरीर को पके हुए फल की तरह समझे जो कभी भी पेड़ से गिर सकता है। अतएव वह मन से देह को त्यागकर सनातन ब्रह्म में स्थित होकर रहे, जो निरामय, अनादि, अनंत, बीजहीन, मन-इंद्रियों से परे स्वयं आत्मा है। जैसे पक्षी घोंसले को त्यागकर उड़ जाता है, वैसे भिक्षु (संन्यासी) शरीर को मन से त्यागकर सदैव आत्मलीन रहे।

मनुष्य अपने कर्मों के फल पाता है। अतएव सदैव शुभ कर्म में मन लगावे। ज्ञान का फल अभिमान नहीं है, अपितु शांति है। “विवेकवान साधक अपने हृदय में विराजमान परमात्मदेव का साक्षात्कार करे—*ज्ञानयुक्तस्तथा देवं हृदिस्थमुपलक्षयेत्* (अध्याय)।” “हृदय में स्थित अविनाशी शाश्वत ईश्वर का विवेक से दर्शन करे—*संस्थितं हृदये पश्येदीशं शाश्वतमव्ययम्*।” जो व्यक्ति योगयुक्त नहीं है, वह अपने हृदय में स्थित आत्मा रूपी परमात्मा का दर्शन नहीं कर सकता।

यदि हृदय-देश में ध्यान-धारण नहीं कर सके तो सांख्य के अनुसार साधना करे। पांच ज्ञानेंद्रियां, पांच कर्मेंद्रियां, पांच तत्त्व तथा सोलहवां मन, ये सोलह विकार हैं। पांच विषय, मन, अहंकार और अव्यक्त आठ प्रकृतियां हैं। इन चौबीसों जड़तत्त्वों को जानने वाला पचीसवां चेतन पुरुष इन जड़-विकारों से परे है। इस तरह विवेक करने से मनुष्य देहाभिमान छोड़कर भवसागर से पार हो जाता है। विवेकी को सांख्य-योग जानना चाहिए। शांतचित्त होकर प्रतिदिन प्रकृति-पुरुष का भिन्न विवेक करने से यथार्थता का बोध हो जाता है और बंधन छूट जाता है।

साधक को सदैव संत पुरुषों के पास रहना चाहिए। ज्ञान श्रेष्ठ संत पुरुषों के निकट रहकर सीखना-समझना चाहिए। सत्संग से मनुष्य विकारों से ऊपर उठ जाता है।

प्रश्न होता है कि पूजनीय तथा वंदनीय कौन है? एक बार इंद्र के सारथि मातलि ने इंद्र से पूछा-देवेंद्र! आप सभी देवों द्वारा पूज्य हैं; परंतु आप स्वयं किसको पूज्य मानते हैं?

इंद्र ने कहा-मातलि! धर्म, अर्थ तथा काम का चिंतन करते हुए भी जिनकी बुद्धि अधर्म (हिंसा) में नहीं लगती, मैं उनकी वंदना करता हूँ। जिन्हें देखकर युवतियां काम-मोहित हो जाती हैं, वे सुंदर युवक जो काम-भोग से मन, कर्म, वाणी से दूर हैं, मैं उनकी वंदना करता हूँ। जो प्राप्त में संतुष्ट है, दूसरों से कुछ पाने की इच्छा नहीं रखता, मीठे वचन बोलता है, ज्ञान दाता है, कामना-अहंकारशून्य है, मैं उसकी वंदना करता हूँ। धन, विद्या तथा ऐश्वर्य जिनकी बुद्धि को विचलित नहीं कर पाते, जो बुद्धि पर नियंत्रण रखते हैं, जो इंद्रियजित, पर्वत के समान दृढ़ स्थित, प्रकंपरहित तथा भीतर-बाहर शांत हैं, मैं उनकी वंदना करता हूँ।

इसके आगे के अंश में सरोवर खोदने और वृक्ष लगाने में पुण्य बताया गया है।

. अनेक दान के महत्त्व तथा उत्तम गति पाने के लिए बताने वाला इंद्र-गौतम के संवाद का रूपक

सत्तानवे ()वें अध्याय में गृहस्थजनोचित कर्मकाण्ड का वर्णन है। अट्टानवे ()वें अध्याय में पुष्प, धूप, दीप और उपहार के दान का महत्त्व बताया गया है। निन्यानवे ()वें तथा सौ ()वें अध्याय में राजा नहुष की कहानी है। वे अपने तप से ब्रह्मा को खुश कर उनसे वरदान पाये। वे इंद्र भी हो गये; परंतु अहंकारी हो गये। यहां तक कि वे अपने रथ को ऋषियों द्वारा खिंचवाने लगे। राजा नहुष उस समय इंद्र थे। उनके घर में देवताओं को दीपदान, जलदान, अन्नदान आदि चल रहे थे, परंतु प्रमादवश उन्होंने यह सब बंद करवा दिया। इसलिए उनका प्रमाद बढ़ गया। परिणाम हुआ कि भृगु तथा अगस्त्य के शाप से राजा नहुष इंद्र-पद से पतित हो गये।

एक सौ एक ()वें अध्याय में बताया गया है कि यदि कोई ब्राह्मण के धन का अपहरण करता है, तो उसकी दुर्गति होती है।

एक सौ दो ()वें अध्याय में विविध शुभ कर्मों के करने से विविध उच्च लोकों की प्राप्ति बताने के लिए गौतम ब्राह्मण और धृतराष्ट्र के बनावटी रूप में इंद्र का संवाद है, जिसमें एक हाथी को वार्ता का आधार बनाया गया है। कथन रोचक है। उसे पढ़ें-